૧૯૧
કહાણી

૮૦૬૩
૧૧-૩-૬૮

१४१
कहानी

८०४३
११ ३ ६८

राधाकृष्ण

७०४२
११.३.६८

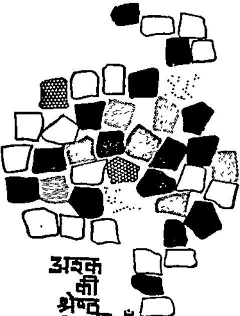

अश्क की श्रेष्ठ कहानियाँ

इस पुस्तक में

साथी ७ ● काकड़ों का तेली १८ ● काले साहब ३५ ● कैप्टन रशीद ४४
उबाल ६३ ● बच्चे ७७ ● तकल्लुफ ९३ ● चारा काटने की मशीन १०९
गली का नाम ११४ पलंग १२१

डाची

काट[1] 'पी-सिकन्दर' के मुसलमान जाट बाकर को अपने माल की ओर लालच-भरी निगाहों से तकते देखकर चौधरी नन्दू पेड़ की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज़ में ललकार उठा, "रे-रे अठे के करे है ?"[2] और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो पेड़ के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने के कारण, मोटी खादी के कुरते से उसका विशाल सीना और मज़बूत बाँहें दिखाई देने लगीं।

बाकर कुछ निकट आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरअाई मूँछों के ऊपर गढ़ों में धँसी हुई दो आँखों में पल-भर के लिए चमक पैदा हुई और ज़रा मुस्कराकर उसने कहा, "डाची[3] देख रहा था चौधरी, कैसी ख़ूबसूरत और जवान है, देखकर आँखों की भूख मिटती है !"

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी नन्दू का तनाव कुछ कम हुआ, प्रसन्न होकर बोला, "किसी साँड़ ?"[4]

"वह, परली तरफ से चौथी।" बाकर ने संकेत करते हुए कहा।

ओकाँह[5] के एक घने पेड़ की छाया में आठ-दस ऊँट बँधे थे। उन्हीं में वह जवान साँडनी अपनी लम्बी सुन्दर और सुडौल गर्दन बढ़ाए घने पत्तों में मुँह मार रही थी। माल-मंडी में दूर, जहाँ तक नज़र जाती

१. काट=दस-बीस सिरकियों के छेमों का छोटा-सा गाँव। २. अरे तू यहाँ क्या कर रहा है ? ३. डाची= ऊँटनी। ४. कौनसी डाची ? ५. एक वृक्ष विशेष

थी, बड़े-बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँड़नियों, काली-मोटी बेडौल भैंसों, सुन्दर नागौरी सींगों वाले बैलों और गायों के सिवा कुछ दिखाई न देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावलनगर के मरुस्थल में होने वाली माल-मंडी में उनका आधिक्य था भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जानवर है। इस रेतीले इलाक़े में आमद-रफ़्त, खेती-बाड़ी और बारबरदारी का काम इसी से होता है। पुराने समय में जब गायें दस-दस और बैल पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में मिल जाते थे, तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था और अब भी, जब इस इलाक़े में नहर आ गई है, पानी की इतनी क़िल्लत नहीं रही, ऊँट का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँटों के दाम दो-दो सौ से तीन-तीन सौ तक लग जाते हैं और वाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम में हाथ नहीं आते।

तनिक और आगे बढ़कर वाक़र ने कहा, "सच कहता हूँ, चौधरी, इस जैसी सुन्दर साँड़नी मुझे सारी मंडी में दिखाई नहीं दी।"

हर्ष से नन्दू का सीना दुगुना हो गया; बोला, "आ एक ही के, इह तो सगली फूटरी हैं। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसी निरिया करूँ।"[1]

धीरे से वाक़र ने पूछा, "बेचोगे इसे?"

नन्दू ने कहा, "इठई बेचने लई तो लाया हूँ।"

"तो फिर बताओ, कितने को दोगे?"

नन्दू ने नख से शिख तक वाक़र पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला, "तन्ने चाही जै का तेरे धनी वेई मोल लेसी?"[2]

"मुझे चाहिए," वाक़र ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मज़दूर की यह बिसात कि सुन्दर साँड़नी मोल ले। बोला, "तूँ की लेसी?"

---

१. एक ही क्या, यह तो सब ही सुन्दर हैं। मैं इन्हें चारा और फलूँसी (जवार आदि) देता हूँ। २. तुझे चाहिए या तू अपने मालिक के लिए मोल लें

उन्हें बाकर की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने के लिए व्यग्र हो उठे। तनिक जोश के साथ उसने कहा, "तुम्हें इससे क्या, कोई ले, तुम्हें तो अपनी कीमत से गरज है, तुम दाम बताओ।"

नन्दू ने उसके घिसे-फटे कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे बाबा आदम के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने के विचार से कहा, "जा-जा, तू दूसी-विसी ले आयी, इंगो मोल तो आठ बीसी सूं घाठ के नहीं।"[1]

पल-भर के लिए बाकर के थके हुए, व्यथित चेहरे पर उल्लास की रेखा झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मोल न बता दे, जो उसकी बिसात से ही बाहर हो, पर जब अपनी जबान से ही उसने एक सौ साठ रुपये बताये तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। एक सौ पचास रुपये तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना तो दस रुपये वह उधार कर लेगा। मोल-तोल तो उसे करना आता न था। झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिये। बोला, "गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मरजी।"

नन्दू ने अनमने भाव से नोट गिनने शुरू किये, पर गिनती खत्म करते-न-करते उसकी आँखें चमक उठीं। उसने तो बाकर को टालने के लिए ही मोल इतना बता दिया था, नहीं मंडी में अच्छी-से-अच्छी डाची डेढ़ सौ में मिल जाती और इसके तो एक सौ चालीस रुपये पाने का भी उसे खयाल न था। पर शीघ्र ही मन के भावों को छिपाकर और जैसे बाकर पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला, "साँड़ तो मेरी दो सै की है, पण जा, सगी मोल मियाँ सन्नै दस छाडिया।"[2] और यह कहते-कहते उठकर उसने साँड़नी की रस्सी बाकर के हाथ में दे दी।

---

१. जा, जा, जा, तू कोई ऐसी-वैसी खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।

२. साड़नी तो मेरी दो सौ रुपये की है, पर जा सारी कीमत में से तुम्हें दस रुपये छोड़ [illegible]

क्षण-भर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह सांड़नी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी। आज पाल-पोसकर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी ही दशा हुई, जो लड़की को ससुराल भेजते समय माँ-बाप की होती है। जरा काँपती आवाज में, स्वर को तनिक कम करते हुए, उसने कहा, "आ सांड़ सोरी रहेड़ी है, तूं इनैं रेहड़ ही में न गेर दई।"[1] ऐसे ही, जैसे ससुर दामाद से कह रहा हो, 'मेरी लड़की लाड़ों पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।'

उल्लास के पंखों पर उड़ते हुए बाक़र ने कहा, "तुम ज़रा भी चिन्ता न करो, मैं इसे अपनी जान के साथ रखूँगा।"

नन्दू ने नोट अंटी में सम्हालते हुए, जैसे सूखे हुए गले को ज़रा तर करने के लिए, घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा। मंडी में चारों ओर धूल उड़ रही थी। शहरों की माल-मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अस्थायी नल लग जाते हैं और सारा-सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती, फिर रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल ही का साम्राज्य था। गन्ने वाले की गँडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचे वाले के दही-बड़े पर, सब जगह धूल का राज था। घड़े का पानी टाँचियों द्वारा नहर से लाया गया था, पर यहाँ आते-आते वह कीचड़-जैसा गँदला हो गया था। नन्दू का ख़याल था कि निथरने पर पियेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को ख़त्म करके नन्दू ने बाक़र से भी पानी पीने के लिए कहा। बाक़र आया था तो उसे गज़ब की प्यास लगी हुई थी, पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ? वह रात होने से पहले-पहले गाँव पहुँच जाना चाहता था। डाची की रस्सी पकड़े वह धूल को चीरता हुआ-सा चल पड़ा।

बाक़र के दिल में बहुत दिनों से एक सुन्दर और युवा डाची ख़रीदने ... थी। जाति से वह कमीन था। उसके पुरखे कुम्हारों का ... ने थे, किन्तु उसके पिता ने अपना पैतृक काम छोड़कर मज़दूरी

[1] अच्छी तरह रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न मिला देना।

रता शुरू कर दिया था। उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और पने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आ रहा था। वह काम अधिक रता हो, यह बात न थी। काम से उसने सदैव जी चुराया था। रता भी क्यों न, जब उसकी बीवी उससे दुगुना काम करके उसके गर को बँटाने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब ड़ा न था—एक वह, एक उसकी पत्नी और एक नन्हीं-सी बच्ची। फर किसलिए वह जी हलकान करता ? पर क्रूर और 'बेपीर' वेधाता—उसने उस सुख की नींद से जगाकर उसे अपनी जिम्मेदारी समझने पर विवश कर दिया। उसे बता दिया कि जीवन में सुख ही नहीं दुख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए उसकी वही आराम देने वाली प्यारी बीवी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय, अपनी सारी करुणा को अपनी पथरायी आँखों में बटोरकर उसने बाक़र से कहा था, "मेरी रज़िया अब तुम्हारे हवाले है, इसे तकलीफ़ न होने देना !" इसी एक वाक्य ने बाक़र की ज़िन्दगी की धारा को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमोद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था।

वह दिन-रात काम करता था ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्हीं-सी गुड़िया को, तरह-तरह की चीज़ें लाकर प्रसन्न रख सके। जब भी वह मंडी से लौटता, नन्ही-सी रज़िया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से अटे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती, "अब्बा, मेरे लिए क्या लाये हो ?" तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रज़िया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को अपने खिलौने या मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ वर्ष की हुई तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी, "अब्बा, हम तो दाची लेंगे ! अब्बा, हमें दाची ले

ऐसे अवसर पर सदैव बाक़र के सामने उसकी मृत पत्नी का चि खिंच आता, उसकी आखिरी इच्छा उसके कानों में गूँज जाती। व आँगन में खेलती हुई रज़िया पर एक स्नेह-भरी दृष्टि डालता औ विषाद से मुस्कराकर फिर अपने काम में लग जाता। और आज—डे वर्ष के कड़े परिश्रम के बाद, वह अपनी चिर-संचित अभिलाषा पूरी क सका था। उसके हाथ में सांड़नी की रस्सी थी और नहर के किनारे किनारे वह चला जा रहा था।

साँझ की बेला थी। पश्चिम की ओर डूबते सूरज की किरणें धरती को सोने का अन्तिम दान कर रही थी। बाक़र के मन में अतीत की स बातें एक-एक करके आ रही थीं। इधर-उधर कभी-कभी कोई किसा अपने ऊँट पर सवार जैसे फुदकता हुआ निकल जाता था और कभी-कभ खेतों से वापस आने वाले किसानों के लड़के बैलगाड़ी में रखे हुए घास पट्ठे के गट्ठों पर बैठे, बैलों को पुचकारते, किसी गीत का एक-आध बन गाते या बैलगाड़ी के पीछे बँधे हुए चुपचाप चले आने वाले ऊँटों क थूथनियों से खेलते चले जाते थे।

बाक़र ने, जैसे स्वप्न से जागते हुए, पश्चिम की ओर अस्त हो सूरज की ओर देखा। फिर सामने की ओर शून्य में नजर दौड़ाई उसका गाँव अभी बड़ी दूर था। पीछे की ओर हर्ष से देखकर औ मौन रूप से चली आने वाली सांड़नी को प्यार से पुचकारकर वह औ भी तेज़ी से चलने लगा—कहीं उसके पहुँचने से पहले रज़िया सो न जाए, इसी विचार से।

मशीर-माल की काट नजर आने लगी। यहाँ से उसका गाँव समीप ही था। यही कोई दो कोस। बाक़र की चाल धीमी हो गई और इसके साथ ही कल्पना की देवी अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से उसके मस्तिष्क के चित्रपट पर तरह-तरह की तस्वीरें बनाने लगी। ... देखा, उसके घर पहुँचते ही नन्ही रज़िया खुशी से नाचक ...गों से लिपट गई है और फिर डाची को देखकर उसकी बड़ी ... आश्चर्य और उल्लास से भर गई हैं। फिर उसने देखा

!" भोली-भाली, निरीह बालिका ! उसे क्या मालूम कि वह एक
न्त साधनहीन ग़रीब मज़दूर की बेटी है; जिसके लिए ख़रीदना तो
र रहा, हाथी की कल्पना करना भी अपराध है। हँसी हँसकर
क़र ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला, "रज्जो, तू तो ख़ुद
थी है।" पर रज़िया न मानी। उस दिन मशीर-मान अपनी साँड़नी
र चढ़कर, अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बैठाए दो-चार मज़दूर
ने के लिए इसी काट में आये थे। तभी रज़िया के नन्हे-से मन में
थी पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी और उसी
न से बाक़र की रही-सही सुस्ती भी दूर हो गई थी।

उसने रज़िया को टाल तो दिया था, पर मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह अवश्य रज़िया के लिए एक सुन्दर-सी हाथी मोल लेगा। उसी इलाक़े में, जहाँ उसकी आय की औसत मास-भर में तीन आने रोज़ाना भी न होती थी, अब आठ-दस आने की हो गई। दूर-दूर के गाँवों में अब वह मज़दूरी करता। कटाई के दिनों में वह दिन-रात काम करता—फसल काटना, दाने निकालना, खलिहानों में अनाज भरना, नीरा डालकर भूसे के कूप बनाना! वह बिजाई के दिनों में हल चलाना, क्यारियाँ बनाना, बिजाई करना। उन दिनों उसे पाँच आने से लेकर आठ आने रोज़ाना तक मज़दूरी मिल जाती। जब कोई काम न होता तो प्रातः उठकर आठ कोस की मंज़िल मारकर मंडी जा पहुँचता और आठ-दस आने की मज़दूरी करके ही घर लौटता। उन दिनों वह रोज़ छः आना बचाता आ रहा था। इस नियम में उसने किसी तरह की ढील न होने दी थी। उसे जैसे उन्माद-सा हो गया था। बहन कहती, "बाक़र, अब तो तुम बिलकुल ही बदल गए हो, पहले तो तुमने कभी ऐसी जी-तोड़ मेहनत न की थी।"

बाक़र हँसता और कहता, "तुम चाहती हो, मैं उमर-भर निठल्ला बना रहूँ?"

बहन कहती, "निठल्ला बनने को तो मैं नहीं कहती, पर सेहत गँवाकर रुपया जमा करने की सलाह भी मैं नहीं दे सकती।"

वह रजिया को आगे बैठाये सरकारी नाले (नहर) के किनारे-किनारे डाची पर भागा जा रहा है। शाम का वक्त है, ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है और कभी-कभी कोई पहाड़ी कौवा अपने बड़े-बड़े पंख फैलाए अपनी मोटी आवाज में दो-एक बार काँव-काँव करके ऊपर से चला जाता है। रजिया की खुशी का वारपार नहीं। वह जैसे हवा में उड़ी जा रही है...फिर उसके सामने आया कि रजिया को लिये वह बहावलनगर की मंडी में गया है। नन्ही रजिया मानो भौंचक्की-सी है। हैरान और चकित-सी चारों ओर अनाज के इन बड़े-बड़े ढेरों, अगनित छकड़ों और दूसरी दसियों चीजों को देख रही है। वाक़र खुश-खुश उसे सबकी कैफ़ियत दे रहा है। एक दूकान पर ग्रामोफ़ोन बजने लगता है। वाक़र रजिया को वहाँ ले जाता है। लकड़ी के इस डिब्बे से किस तरह गाना निकल रहा है, कौन इसमें छिपा गा रहा है, ये सब बातें रजिया की समझ में नहीं आतीं और यह सब जानने के लिए उसके मन में जो कुतूहल और जिज्ञासा है, वह उसकी आँखों से टपकी पड़ती है।

वह अपनी कल्पना में मस्त काट के पास से गुजरा जा रहा था कि सहसा कुछ विचार आ जाने से रुका और काट में दाखिल हुआ।

मशीर-माल की काट भी कोई बड़ा गाँव न था। इधर के सब गाँव ऐसे ही हैं। ज्यादा हुए तो तीस छप्पर हो गए। कड़ियों की छत का या पक्की ईंटों का मकान इस इलाक़े में; अभी नहीं। खुद वाक़र की काट में पन्द्रह घर थे, घर क्या झुंगियाँ थीं, सिरकियों के खेमे—जिन्हें झोंपड़ियों का नाम भी न दिया जा सकता था। मशीर-माल की काट भी ऐसी ही बीस-पच्चीस झुंगियों की बस्ती थी; केवल मशीर-माल का निवास-स्थान कच्ची ईंटों से बना था, पर छत उस पर भी छप्पर की ही थी। वाक़र नानक बढ़ई की झुंगी के सामने रुका। मंडी जाने से वह जहाँ डाची का गदरा (काठी) बनने के लिए दे गया था। आया कि यदि रजिया ने साँड़नी पर चढ़ने की जिद की से कैसे टाल सकेगा! इसी विचार से वह पीछे मुड़ आया था।

नानक को दो-एक आवाजें दीं। अन्दर से शायद उसकी पत्नी ने दिया, "घर में नहीं हैं, मंडी गये हैं।"

ाक़र का दिल बैठ गया। वह क्या करे, यह न सोच सका। यदि मंडी गया है तो गदरा क्या खाक बनाकर गया होगा! उसने सोचा शायद बनाकर रख गया हो। इस खयाल से उसे तसल्ली मिली। उसने फिर पूछा, "मैं सौंड़नी की काठी बनाने के दे गया था, वह बनी या नहीं?"

जवाब मिला, "हमें मालूम नहीं!"

बाक़र की आधी खुशी जाती रही। बिना गदरे के वह डाची को ले जाए! नानक होता और उसका गदरा न भी बना होता, तो कोई दूसरा ही उससे माँगकर ले आता। यह विचार आते ही उसने ा, 'चलो मशीर-माल से माँग लें। उनके तो इतने ऊँट रहते हैं, ई-न-कोई पुरानी काठी होगी ही। अभी उसी से काम चला लेंगे; तक नानक नया गदरा तैयार कर देगा।' यह सोचकर वह मशीर-ल के घर की ओर चल पड़ा।

अपनी मुलाजमत के दिनों में मशीर-माल साहब ने पर्याप्त धन ट्ठा किया था। जब इधर नहर निकली तो उन्होंने अपने पद और भाव के बल पर रियासत में कौड़ियों के मोल कई मुरब्बे जमीन ले ली। अब नौकरी से अवकाश ग्रहण कर यहीं आ रहे थे। राहक[1] रखे ए थे। आय खूब थी और मजे से जिन्दगी बसर हो रही थी। अपनी ौपाल में एक तख्त पर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे—सिर पर सफ़ेद ाफ़ा, गले में सफ़ेद क़मीज, उस पर सफ़ेद जाकेट और कमर में दूध-से रंग का तहमद। गर्द से अटे हुए बाक़र को सौंड़नी की रस्सी पकड़े ाते देखकर उन्होंने पूछा, "कहो बाक़र, किधर से आ रहे हो?"

बाक़र ने झुककर सलाम करते हुए कहा, "मंडी से आ रहा हूँ, मालिक।"

"यह डाची किसकी है?"

---

१. मुज़ारे।

5"

"ऐसी ही है मालिक, अभी मंडी से ला रहा हूँ।"

"कितने को लाए हो ?"

बाक़र ने चाहा, कह दे, आठ-बीसी को लाया हूँ। उसके नयनों में ऐसी सुन्दर डाची दो सौ में भी सस्ती थी, पर मन न माना, बोला "हजूर, माँगता तो एक सौ साठ था, पर डेढ़ सौ में लाया हूँ।"

मशीर-माल ने एक नज़र डाची पर डाली। वे स्वयं अरसे से एक सुन्दर-सी डाची अपनी सवारी के लिए लेना चाहते थे। उनके डाची तो थी, पर पिछले वर्ष उसे सीमक[1] हो गया था और यद्यपि नील इत्यादि देने से उसका रोग तो दूर हो गया था, पर उसकी चाल में वह मस्ती, वह लचक न रही थी। यह डाची उनकी नज़रों में जँच गई।··· क्या सुन्दर और सुडौल अंग हैं! क्या सफ़ेदी-मायल भूरा-भूरा रंग है! क्या लचकदार लम्बी गर्दन है! बोले, "चलो, हमसे आठ बीसी ले लो, हमें एक डाची की ज़रूरत है। दस तुम्हारी मेहनत के रहे।"

बाक़र ने फीकी हँसी के साथ कहा, "हजूर अभी तो मेरा चाव भी पूरा नहीं हुआ।"

मशीर-माल उठकर डाची की गर्दन पर हाथ फेरने लगे वे—वाह! क्या असील जानवर है! प्रकट बोले, "चलो पाँच और ले लेना!"

और उन्होंने आवाज़ दी, "नूरे, अरे ओ नूरे!"

नौकर भैंसों के लिए पट्ठे काट रहा था। गँडासा हाथ ही में लिये भाग आया। मशीर-माल ने कहा, "यह डाची ले जाकर बाँध दो! एक सौ पैंसठ में, कहो कैसी है ?"

नूर ने हतबुद्धि-से खड़े बाक़र के हाथ से रस्सी ले ली और नख से शिख तक एक नज़र डाची पर डालकर बोला, "खूब जानवर है!" और यह कहकर नौहरे[2] की ओर चल पड़ा।

तब मशीर-माल ने अंटी से साठ रुपये के नोट निकालकर बाक़र

---

१. ऊंटों की बीमारी। २. भूसा आदि रखने का [illegible]

हाथ मे देते हुए मुस्कराकर कहा, "अभी एक ग्राहक देकर गया शायद तुम्हारी ही किस्मत के थे। अभी यह रखो, बाकी भी एक-महीने में पहुँचा दूँगा। हो सकता है, तुम्हारी किस्मत से पहले भी जाएँ।" और बिना कोई जवाब सुने वे नोहरे की ओर चल पड़े। ा फिर चारा काटने लगा था। दूर ही मे आवाज़ देकर उन्होंने कहा, भैंस का चारा रहने दे, पहले डाची के लिए गवारे का नीरा कर डाल, ी मालूम होती है।"

और पास जाकर साँडनी की गरदन सहलाने लगे।

कृष्ण पक्ष का चाद अभी उदय नही हुआ था। विजन मे चारों र कुहासा छा रहा था। सिर पर दो-एक तारे निकल आए थे और र बबूल और ओंकोह के वृक्ष बड़े-बड़े काले सियाह धब्बे बन रहे थे। ग की एक भाड़ी की ओट में अपनी काट के बाहर बाकर बैठा उस ोए प्रकाश को देख रहा था जो सरकण्डों से छन-छनकर उसके आँगन आ रहा था। जानता था रज़िया जागती होगी, उसकी प्रतीक्षा कर ही होगी। वह इस इन्तज़ार मे था कि दीया बुझ जाए, और रज़िया जाए तो वह चुपचाप अपने घर मे दाखिल हो।

काकड़ाँ का तेली

'अढ़ाई रुपये !' मौलू ने सिर हिलाकर अपनी पत्नी की ओर देखा उन आँखों से, जो मानो कह रही थीं कि शायद उस ताँगे वाले की कहीं जान मरने लगी गई है।

अभी मुश्किल से आठ-साढ़े-आठ का वक़्त होगा, किन्तु दिन पहाड़ सा निकल आया था। सूरज बिलकुल सिर पर मालूम होता था। गरम इतनी थी कि दम घुटा जाता था। गर्द की हल्की-सी धुन्ध चारों छायी हुई थी और इस कारण किरणें यद्यपि सीधी न पड़ती थीं तो शरीर के नंगे भागों में नोकें-सी चुभती महसूस होती थीं।

मौलू ने अपनी बड़ी-सी पगड़ी को ठीक किया, उसकी पत्नी ने रात को रीठों के पानी से धोया था और चावलों कनी को पकाकर कलफ़ लगाया था और जिसे दोनों सिरों से उसकी दोनों बेटियों ने आँगन में चक्कर लगा-लगाकर सुखाया था जो रात भर तह करके रखी रही थी और इस समय उसके सिर चमक रही थी और सिर के झटके से एक ओर को हो गई थी। उसने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर (जो होठों के पास पीली-सी हो गई थी हाथ फेरा, गठरी को बायें कन्धे पर करके दायें हाथ से तहमद ज़रा-सा झटका दिया और चल पड़ा।

बीवाँ, उसकी पत्नी ने सामने जाते हुए ताँगे के पीछे उड़ती हुई आँखें गड़ा दीं और बोली, "अढ़ाई रुपये ! इतने से तो पन्द्रह खर्च चल सकता है, और नहीं तो फ़ज्जे की दो कमीज़ें या मेरे

ाग की कई कुर्तियाँ बन सकती है ।" और उसने गोद के उवली-, ती, मूजी-मूजी आँखो वाले काले-स्याह बच्चे को मुहब्बत से चूम ा।

जूते के साथ गर्द उड़कर मौलू के तहमद पर पड़ रही थी। रात की पत्नी ने पगड़ी और कमीज के साथ उसको धोया था, और त भी दिया था, जो शायद रात के अँधेरे मे अधिक दिया था, क्योंकि मद की सफ़ेदी मे हल्की-सी नीलाहट साफ़ दिखाई दे रही थी और ों-ज्यों गर्द पड़ती थी, वह और भी उभरती थी। मौलू ने फिर एक टका देकर तहमद को ऊपर खीम लिया। "इन कमबख्त तागे वालो ने ड़क का सत्यानाश कर दिया है, मिट्टी मैदा बन गई है।"—और सने अपनी पत्नी और उनके पीछे आने वाली दोनों लड़कियो और त-आठ वर्ष के बच्चे से कहा कि वे सड़क छोड़कर मेंड-मेंड होकर लें।

वहाँ तो सिर्फ तांगे ही चलते थे, लेकिन जब मौलू तीन-चार मील लकर भीलोवाल के पास पहुँचा, जहाँ मोटर-लारियाँ भी तशरीफ़ ाती थी और बकरियो और भेड़ो का एक रेवड़ 'मैं-मैं' 'भैं-भैं' करता ृया कस्बे से निकला और रात भर बाड़े में बन्द रहने के बाद चंचल ौर शोख़ बकरियाँ (जो माएँ न बनी थी और जिनके स्तन इतने भारी र थे कि उनके नीचे थैली की ज़रूरत पड़े) और जीवन की कटु-वास्त-विकता से अनभिज्ञ मेमने कुलाचें भरने लगे तो मौलू को इस मैदे की यथार्थता का पता लगा—गर्द इस तरह उड़ी कि उसके लिए आँख खोलना और मुड़कर अपने बच्चों को देखना तक असम्भव हो गया।

जब तूफान कुछ थमा और बकरियों और भेड़ों की आवाज़ो को दबाती हुई चरवाहों की कर्कश गालियाँ श्रवण-शक्ति की सीमा से परे चली गईं, तो मौलू सड़क को पार करके दूसरी ओर गेहूँ के कटे हुए खेत में जा खड़ा हुआ। गठरी उतारकर धरती पर रख दी, तहमद और कमीज को अच्छी तरह झाड़कर उसने सिर से पगड़ी उतारी और उसे भली-भाँति झाड़ा; कमीज के दामन को उलटा करके उससे मुँह पोंछा;

[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] आएँ ।

[illegible] और [illegible] और आसमान में [illegible] [illegible]
[illegible] थी । [illegible] हुई थी । ज्यों-ज्यों [illegible]
[illegible] जाता था, [illegible] भी [illegible] जाती थी । [illegible]
[illegible] और [illegible] और [illegible] में [illegible] को कई [illegible]
[illegible] "बदजात ! नहीं जानते कि यहाँ
में [illegible] आ रहे हैं, [illegible] कि [illegible] एक [illegible]
[illegible] जैसे [illegible] आ रहे हों...!'
उन्हें एक [illegible] गाली और अपनी मूँछों को प्यार देते हु[illegible]
[illegible] अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर लिया ।

'शरीफ़' से मौलू का क्या मतलब था, यह बात उसे स्वयं मालू[म] न थी । वह 'कोल्हू' का तेली था । गाँव के उस किनारे, जहाँ बरग[द] का एक महान पेड़ बढ़कर आधे जोहड़ को अपने अधिकार में ले चु[का] था, उसने एक छोटा-सा कोल्हू लगा रखा था । जोहड़ के किनारे-किना[रे] रूड़ी[1] के ढेर लगे हुए थे । कभी जब वर्षा होती तो जोहड़ का पान[ी] अपने किनारों के ऊपर से बह निकलता, मार्ग अवरुद्ध हो जाते, टाँ[गें] घुटनों तक कीचड़ में धँस जातीं और रूड़ी के ढेरों की दुर्गन्ध बरगद के साए की नमी में जैसे वहीं जमकर रह जाती—लेकिन अपने जीवन के पचपन वर्ष मौलू ने इसी स्थान पर गुजारे थे । गाँव से बीस मील परे क्या होता है, इसकी उसे कभी खबर न हुई थी । जीवन में शायद तीन-चार ही ऐसे अवसर आये थे, जब उसे धुले हुए कपड़े पहनने को मिले थे । ईद पर हर साल वह अवश्य कपड़े बदला करता था, किन्तु उसका कपड़े बदलना यही होता कि नंगे बदन रहने के बदले वह उस दिन कमीज़ भी पहन लेता या बीवी अधेले के रीठे लेकर उन्हें मल डालती, [न]हीं तो उसकी आयु तो तेल में सने हुए काले, चाकट कपड़ों में गुज़र गई । कपड़ों में क्या—आयु का अधिकांश भाग तो उसने केवल एक

१. रूड़ी=गन्दगी ।

तहमद में गुजार दिया था। जिस तरह पास रहते हुए भी जोहड़ के गन्दे पानी और उसके किनारे लगे हुए गन्दगी के ढेरों में उसके लिए कोई दुर्गन्ध न रही थी, इसी तरह तेल और पसीने से तर, गन्दे, मैले, जीर्ण-जर्जर कपड़ों के लिए भी उसकी संज्ञा मर गई थी। रही गर्द, तो मात्र तेल के काम से इस गाँव में आजीविका की सूरत न देखकर, उसने वहीं कोल्हू के एक ओर चाक लगा रखा था जहाँ वह घड़े, कुज्जे, लोटे, हाँडियाँ और मटके बनाया करता था। वह जाति से कुम्हार था या तेली,—इस बात का स्वयं उसे पता न था। अपने दादा और फिर पिता को उसने यही काम करते देखा था और जब से उसने होश सम्हाला था वह यही काम किए जा रहा था। जब उसके हाथ तेल में न होते तो मिट्टी में होते। रही शिक्षा, सो कुराने-पाक की कुछ आयतों के अतिरिक्त (जो वह गलत उच्चारण के साथ बड़ी तन्मयता से पढ़ा करता था) उसने वे सब गालियाँ सीखी थीं जो उसके दादा, फिर बाप और फिर बड़े भाई दिया करते थे। किन्तु आज इस मिट्टी और इस वातावरण के विरुद्ध, जिसमें कि वह जन्मा, पला और परवान चढ़ा, जो ऐसी घृणा की भावना उसके मन में उत्पन्न हो गई और वह अर्ध-नग्न, जीर्ण-शीर्ण तहमद पहने, अपने कपड़ों के अभाव की ओर से बेपरवाह चरवाहों को 'बदतमीज' और 'असभ्य' समझने लगा तो इसका कारण था। पहले तो यह कि वह अपने उस छोटे भाई के लड़के की शादी में शामिल होने के लिए जा रहा था जो लाहौर में रहता था और देहाती की अपेक्षा अधिक शहराती हो गया था। फिर देहातियों के लिए शहर वाले शरीफ होते हैं और चूँकि वह स्वयं एक शरीफ आदमी के लड़के की शादी में जा रहा था, इसलिए वह भी शरीफ ही था। फिर यह कि उसने अत्यन्त साफ-सुथरे कपड़े पहन रखे थे—और शराफत तो एक सापेक्ष-सी चीज़ है—शरीफ वह है जो शरीफ नजर आए और 'कपड़ों' में रहते हुए वह जो कुछ भी हो, इस रास्ते पर जाता हुआ वह पक्का शरीफ और प्रतिष्ठित दिखाई दे रहा था।

सड़क के निकट एक नाला पानी से भरा, किसी बड़े अजगर की भाँति मार्ग में पड़ा हुआ था। मोलू ने उसे पार किया, फिर गठरी रख-कर हाथ बढ़ा, धन्नो को थामा और अपनी पत्नी को नाला पार करने में सहायता दी। रहमों ने हाथ छलाँग मारकर पार पायी, फिर उसने फज्जे को पार उतारने में मदद दी, किन्तु लहरों के जूते की एक कील उभर आयी थी और उसकी दाईं एड़ी में घाव हो गया था। नीचे धरती गरम लोहे की भाँति तप रही थी, इसलिए वह नंगे पाँव चलने का साहस न कर सकी थी और एड़ी उठाए, अपनी कुरती से गरदन पर निचुड़ते हुए पसीने को पोंछती हुई, चली आ रही थी और बहुत पीछे रह गई थी।

"क्यों री अब तक पीछे ही लटकती हुई चली आ रही है, पाँव तेरे टूट गए हैं क्या?" और पल-भर के लिए अपनी नज़ाकत को भूलकर मोलू ने एक अश्लील गाली अपनी लड़की को दे डाली।

"मुझसे चला नहीं जाता," लहरों ने जैसे रोते हुए कहा।

मोलू ने गठरी उठाकर जामुन के एक पेड़ के नीचे रख दी। "ला इधर, मैं इस कील को ठीक करदूँ। अभी ग्यारह-बारह मील हमें जाना है।"

बीबां अपने आँचल से अपने-आपको हवा करती हुई वहीं पेड़ के नीचे घास पर बैठ गई और नन्हे को दूध पिलाने लगी।

रहमों ने खाल के पानी से मुँह धोया और गीले हाथ फ़ज्जे के के मुँह पर फेरे। खाल पर पहुँचकर लहरों ने जूते अपने बाप की ओर फेंक दिए और फिर फलांगकर इस ओर आ गई, किन्तु पाँव उसका अब भी लँगड़ा रहा था।

मोलू ने कील को देखा—उसकी पतली-सी नोक, जिसका मुर्चा घाव की नमी के कारण साफ़ हो गया था, किसी नववय के विद्रोही की सिर उठाए चमक रही थी। कहीं से ईंट का एक टुकड़ा ढूँढकर उस नोक को तोड़ दिया। फिर निरन्तर चोटों से उसे बहुत १ धकेल दिया और मुँह पर पानी के छींटे मारकर उसे

—रजबहा।

हमद की दामन की उल्टी तरफ से पोंछता हुआ कुछ क्षण सुस्ताने के लए अपनी पत्नी के पास आ बैठा।

"वैरोके तो बस पास ही है, आमों के इस बाग के पीछे; यहाँ से सुनते हैं अटारी दस मील है। तो मजे से तीसरे पहर वहाँ जा पहुँचेंगे।" और फिर ताँगे वाले की बात का खयाल आ जाने से उसे हँसी आ गई—कमबख्त अढ़ाई रुपये माँगता था। छः मील तो हम आ गए।"

"अढ़ाई रुपये," उसकी पत्नी ने कहा, "जैसे हमारे यहाँ रुपयों के खज़ाने हों। वहाँ जाएँगे तो क्या हुसनखाँ के बच्चों के लिए कुछ न लेकर जाएँगे?"

यह हुसनखाँ, जो अपने जीवन के पैंतीस वर्ष तक गाँव में सिर्फ 'हस्सू' के नाम से पुकारा जाता रहा, लाहौर में ईश्वरसिंह सरकारी ठेकेदार का मेट था। जब लोपोके की नहर बननी शुरू हुई तो न जाने किस तरह, मौलू आज तक इस बात को नहीं समझ सका, हस्सू जाकर मजदूरों में शामिल हो गया—छः आने दैनिक मजदूरी पर। फिर ठेकेदार ईश्वरसिंह ने खुश होकर उसे पाँच रुपये महीने पर मेट बना लिया, फिर आठ कर दिए और जब उस काम को खत्म करके ठेकेदार ईश्वरसिंह लाहौर चला गया तो अपने इस विश्वसनीय मेट को भी साथ ले गया। उसी दिन से 'हस्सू' 'हसन खाँ' बन गया था। गाँव में जब वह एक बार आया तो चौड़े पायँचों की सलवार, बोस्की की कमीज और सिर पर कुल्लेदार साफा उसने पहन रखा था, जिसका तुर्रा एक फूल की तरह खिला हुआ था। मौलू चकित रह गया था और समझ न पाया था कि किस तरह उसके इस छोटे भाई ने इतना ओहदा और इतना इल्म प्राप्त कर लिया है!

इस जामुन की छाया में बैठे-बैठे अपनी तहमद की गाँठ खोलकर मौलू ने सब पैसे निकाले। अधिकांश पर मिट्टी और तेल की काली तह जम गई थी और यद्यपि धरती से निकालकर तहमद में बाँधने से पहले उसने उन्हें अच्छी तरह धो लिया था, तो भी तहमद का वह हिस्सा,

२१८०६३

[illegible] था।

[illegible] और [illegible] पैसों के [illegible] पर [illegible] [illegible] और कुछ [illegible] पैसा-पैसा करके [illegible] [illegible] दो साल में [illegible] थी। [illegible] का हुआ और उनकी सगाई हुई, उन्हें इस बात की चिन्ता हो गई थी कि उनका विवाह अब समीप ही है। इसलिए उन्हें कुछ-न-कुछ बनाना चाहिए। चूँकि इस लाहौर चला गया था और उसने यह भी बता दिया था कि वह लड़के की शादी लाहौर ही करेगा, इसलिए वे उस विवाह में शामिल होने के लिए दो साल से कुछ-न-कुछ बचाने का प्रयास करते आ रहे थे और दो साल से ही बच्चे उस विवाह में शामिल होने के ख्याल से इस बात का जिक्र करके कि उन्हें वहाँ क्या-क्या खाने को और क्या-क्या उपहार-स्वरूप मिलेगा, खुश हो रहे थे। किन्तु गत वर्ष मौलू केवल दो रुपये बचा पाया था और इस वर्ष सिर्फ़ दो रुपये और कुछ आने।

और इन दो वर्षों में उसने कम परिश्रम नहीं किया। जितनी सरसों वह प्राप्त कर सकता था, उसने प्राप्त की थी और जितना तेल इर्द-गिर्द के गावों में बेचा जा सकता था, उसने बेचा था। अपनी सप्लाई को बढ़ाने के लिए उसने सरसों में सत्यानाशी मिलाने से भी संकोच न किया था और जब उसके ग्राहकों ने शिकायत की थी कि तेल बालों में ज्यादा लगता है तो उसने बड़े गर्व से कहा था कि खालिस कच्ची घानी का जो हुआ, वरना नाखालिस तेल यदि लगाओ तो यह भी पता नहीं चलता कि बालों में कोई तेल लगा है या नहीं! फिर फ़सल के दिनों में उसने कटाई का काम भी किया था और पीर दौले शाह और क्रीम शाह की खानकाहों पर लगने वाले मेलों में घड़ों और मटकों की दुकानें भी लगाई थीं, लेकिन इस पर भी वह गत दो वर्ष में यही कुछ बचा पाया था। और बिना सालन की रूखी रोटी के सिवा उन्हें कभी कुछ

प्राप्त न हुआ था। यह ठीक है कि इस विवाह के खयाल से उसने अपनी बीवी और बेटियों को गबरून की एक-एक कमीज और दरेस की एक-एक सुथनी सिलवा दी थी, स्वय भी एक तहमद और साफा खरीदा था और फ़ज्जे को भी एक तहमद ले दी थी। लेकिन इन सबके लिए तो वह भीलो शाह का कर्जदार था, जिसमे उसने वादा किया था कि अगले वर्ष वह जितना तेल निकालेगा, उसकी दुकान में डाल देगा।

वही बैठे-बैठे मौलू ने हिसाब लगाना शुरू किया, "यदि हम अटारी से जाकर चढ़ें तो चार-चार-आने तो मोटर का किराया लगेगा, इस तरह साढ़े चार टिकटों के "

"लेकिन साढ़े चार किस तरह ?" उसकी पत्नी ने बात काटकर कहा, "फ़ज्जे का टिकट किस तरह लग सकता है, अभी कल का बच्चा है, तुम उसे जरा गोद मे उठा लेना !"

"ये मोटर वाले एक ही शैतान होते है", मौलू ने कहना शुरू किया, "अगर मॉंगेंगे तो ? सुना है, तीन साल के बच्चे का टिकट लगता है।"

"हॉं लगता है।" बीवां बोली, "वे न मॉंगें तो भी तुम दे देना।"

"तो ख़ैर एक रुपया टिकटों का सही और फिर शहर का मामला है। वहॉं हसन खॉं की शान होगी। पैदल घिसटते हुए उसके यहॉं कैसे जाया जाएगा ? पड़ोसी न कहेंगे—कैसे भिखमंगे रिश्तेदार हैं इसके ! तॉंगे तक पर नही आ सके। तीन-चार आने तॉंगे पर खर्च करने ही पड़ेंगे।"

बीवां को इस बात का विश्वास था और अपने बच्चों को भी उसने कई महीने पहले कह रखा था कि चचा के घर से उन्हें बहुत-कुछ मिलेगा, इसलिए उसने कहा, "एक रुपये की मिठाई हस्सू के बच्चों के लिए ले जाना, जब वे हमारे बच्चों को इतना कुछ देंगे तो हम किस तरह खाली हाथ जायेंगे ?"

"खैर," मौलू हिसाब लगाकर बोला, "सवा रुपया वापसी पर खर्च

जाएगा तो बाकी बची मुश्किल से बारह आने-एक रुपया बचेगा ।"

लहराँ ने अचानक कहा, "मेरे पाँव में घाव हो गया है, जूता मेरा बिलकुल घिस गया है, मुझे जूता ले देना ।"

रज्जो बोली, 'मेरी चुन्नी फट गई है, मुझे एक नयी चुन्नी ले दो, नाना की लड़की के सामने क्या मैं यह फटी चुन्नी पहनूँगी ?"

मौलू की कमीज़ का दामन पकड़ते हुए फ़ज्जे ने कहा, "अब्बा, हमें बूट ले देना !"

"चलो बैठो !" बीवाँ ने एक झिड़की दी । "सात-आठ दिन वहाँ रहना है, तो क्या अपने पास एक कौड़ी भी न रखेंगे ? फिर लम्बा रास्ता, शरबत-पानी को ही ज़रूरत पड़ जाती है ।"

नोपोके के मोड़ पर उन्हें एक ताँगा जाता हुआ मिला । लहराँ के जूते की कील फिर बाहर निकल आई थी, लेकिन उस घायल दिल की तरह जिसमें कुन्द-सा मज़ाक़ भी छेद कर देता है, वह कुण्ठित, मुड़ी हुई कील लहराँ की घायल एड़ी को और भी घायल कर रही थी और वह लँगड़ा-लँगड़ाकर चल रही थी और काफ़ी पीछे रह गई थी और फ़ज्जा भी चिल्लाने लगा था कि उसे उठा लिया जाए और धूप की शिद्दत से बीवाँ की गोद का बच्चा भी बेहाल होने लगा था ।

मौलू ने बेपरवाही से ताँगे की ओर देखते और जैसे ईंट फेंकते हुए पूछा, "क्यों भई ?"

"कहाँ जाना है ?" ताँगा बिना रोके ताँगे वाले ने पूछा ।

"अटारी !"

"पाँच-पाँच आने !"

"पाँच-पाँच आने ?"

"तुम्हें क्या देना है ?"

लेकिन मौलू ने कुछ उत्तर न दिया । तहमद को फिर ऊपर खोंस, पगड़ी के शमले से गरदन और मुँह का पसीना पोंछ, गठरी के बोझ से -धीरे दबने वाली गरदन को उठाकर वह चल पड़ा ।

लहराँ और फ़ज्जे ने एक बार कहा, "अब्बा ताँगा•••"

कहकर मौलू ने उन्हें चुप करा दिया। बीबाँ ने भी बच्चे को कन्धे से लगाकर झुलाते हुए, होंठों का गोला बनाकर उसमें जबान हिलाते हुए 'लो'''लो'''लो'''करना आरम्भ कर दिया और जब इस पर भी बच्चा न माना तो कमीज़ का बटन खोलकर उसने अपनी छाती निकाल उसके मुँह में दे दी।

सड़क बिलकुल कच्ची थी। सड़क तो उसे कहा भी न जाता था। किसी ज़माने में वहाँ ज़रूर सड़क रही होगी, किन्तु अब तो उसकी विशालता को देखकर उस पर ऐसे दरिया का धोखा होता था, जिसके दोनों किनारे फैलते-फैलते आस-पास की ऊसर धरती में जा मिले हों—हाँ, दोनों ओर परोह के निरर्थक टेढ़े-मेढ़े पेड़, जिनके तने वर्षों के वर्षातप के कारण खोखले हो चुके थे और जो सड़क की सुन्दरता में वृद्धि करने की अपेक्षा उसकी कुरूपता ही बढ़ाते थे, जिनकी लकड़ी जलाने तक के काम न आती थी, जिनके पत्तों को बकरियाँ तक न चरती थीं और जिनकी शाखाओं पर बये तक का घोंसला न था—इस सड़क के अस्तित्व की गवाही देते थे। और कहीं कोई बबूल का कँटीदार पेड़ अपनी लम्बी-लम्बी शाखाओं को सड़क पर झुकाये हुए खड़ा था कि यदि गरमी के ताप से जलता हुआ कोई व्यक्ति छाया में आने का प्रयास करे तो उसकी पगड़ी उतर जाए अथवा उसका चेहरा ज़ख्मी हो जाए।

ईंट तो दूर, किसी कंकर तक का निशान वहाँ न मिलता था, इसलिए किसी पेड़ के तने पर रखकर किसी ढेले से गाड़ने के बावजूद जब कील बार-बार बाहर निकल आती थी, एड़ी का घाव बढ़ता जाता था और चलना उसके लिए प्रतिक्षण दूभर हुआ जा रहा था, तो आखिर तंग आकर लहरी ने जूते हाथ में उठा लिए। धूल दहकती हुई राख की तरह जल रही थी और प्रायः जब गर्द में टखनों तक पाँव धँस जाते तो समस्त शरीर में जलन की एक लहर दौड़ जाती थी। किन्तु कील की चुभन से टीस की जो लहर दौड़ती थी, वह शायद जलन की इस लहर से अधिक कष्टदायक थी, इसलिए वह चली

लाए जा रहा था।

उससे कुछ अन्तर पर उसकी पत्नी चली जा रही थी। उसके समस्त न बच्चे को पुचकारने में लगे हुए थे, फिर रहमाँ थी—जिसे शायद सके पड़ोसी ग्वाले नूरे का ख़याल इस बिलबिलाती धूप की तपन ो महसूस न होने देता था और शायद इस बरसती हुई आग में भी ह स्वप्न देखती चली जा रही थी—उसकी अँगुली थामे फज्जा चल हा था, जिसे कभी वह उठा लेती थी और कभी कमर, कन्धा या हाँ थक जाने पर फिर उतार देती थी—फूल-सा उसका चेहरा कुम्हला या था, ओठ सूख गए थे, गन्दे-मैले हाथों से बार-बार मुँह का सीना पोंछने के कारण उसके चेहरे पर कई दाग लग गए थे और गल उसकी उत्तरोत्तर धीमी होती जा रही थी।

और इन सबके पीछे पूर्ववत् कभी जूता पहनती और कभी उतारती हुई लहराँ लँगड़ाती-लँगड़ाती चली जा रही थी।

नहर से उतरकर मौलू ने देखा, दाईं ओर एक बरगद का घना पेड़ है—सादा बरगद का, जिसका तना बहुत ऊँचा नहीं उठता, मोटी-मोटी, लम्बी-लम्बी, सिर को छूती हुई डालियाँ छतरी की तरह फैलती चली जाती हैं—उसकी एक शाखा पर दो मोर बैठे हैं, निश्चिन्त और मस्त। उनके लम्बे-लम्बे, चमकीले पर धरती को छू रहे हैं और दूर किसी कुएँ की गाधी पर बैठा हुआ कोई जाट 'हीर वारिस शाह'[1] अलाप रहा है। उसकी सुरीली, बारीक, लेकिन ऊँची आवाज़ इस सूनी, खामोश दुपहरी में गूँजती, लहराती हुई उस तक आ रही है.

घर अनान ने गल्ल कीती, भावी इक जोगी नवाँ आया नीं।
कन्नीं ओसदे दरशनी मुन्द्राँ ने, गले हैकला अजब सुहाया नीं।[2]

अतीत के किसी दूरस्थ प्रदेश से आने वाली स्मृति की तरह तरुण यौवन के वे दिन मौलू की आँखों के सामने घूम गए, जब वह अपने

---

१. पंजाबी का अमर काव्य।

२. घर आकर ननद ने कहा कि ऐ भाभी, एक नया जोगी आया है। उसके कानों में दर्शनी मुन्द्राँ हैं और गले में हैकल शोभा दे रहा है।

कर फिर चल पड़े, किन्तु धनीके के मोड़ पर जो वे एक बार रुके तो फिर नहीं बढ़े। थप्पड़ खाने पर भी फज्जा टस-से-मस नहीं हुआ और गालियाँ खाकर भी लहरों बैठी दुपट्टे से आँसू पोंछती रही।

ताँगे वाले से मौलू ने बिलकुल ही न पूछा हो, यह बात नहीं। पूछा था, किन्तु बिना सवार होने के ख्याल से। और यह जानकर कि लोपोके से चौगावाँ तक गर्द का वह दरिया पार करने के बावजूद अभी तक किराये में मात्र एक आने की कमी हुई है और यह जानकर कि आगे सड़क पक्की है और कहीं-कहीं शीशम के पेड़ भी हैं, वह चल पड़ा था।

जब थप्पड़ खाकर फज्जा रोने लगा, लेकिन उठा नहीं, तब बीवाँ ने उसे प्यार देकर उठाना चाहा और नन्हे को रहमाँ के हवाले करके उसे गोद में ले लिया। मस्तक पर हाथ फेरते ही वह सहमकर पुकार उठी—

"देखो तुम इसे पीट रहे हो, इसका पिण्डा तो भट्ठी बना हुआ है!"

और तब ज्वर के वेग से तपे हुए लड़के के चेहरे को देखकर मौलू पिघल उठा और उसने अनिच्छापूर्वक जाते हुए एक ताँगे को रोका और अटारी का किराया पूछा।

"चार-चार आने," ताँगे वाले ने उत्तर दिया।

"चार-चार आने, लेकिन इतना तो चौगावाँ से भी माँगते थे।"

"तुम क्या देते हो?"

"एक-एक आना ले लो, तीन-साढ़े तीन मील हम चल भी तो आए हैं।"

ताँगे वाले का ताँगा तो भरा हुआ था, इसलिए उसे सवारियों की उतनी ज्यादा परवाह न थी। "तो वहीं से जाकर चढ़ जाओ," उसने कहा और हण्टर घुमाया।

"छः-छः पैसे ले लो।"

"ओ तेरी माँ मर जाए!" हण्टर घोड़े की पीठ पर पड़ा और वह चल पड़ा।

"दो आने!"

"[illegible] ताँगे !" उसने [illegible] की पूरी आवाज़ के साथ पुकारा।

[illegible] कुछ [illegible] गया। सवारियाँ भी पूरी थीं, किन्तु 'आगे [illegible] ही नहीं' के अनुसार ताँगे वाले ने दस-बारह [illegible] न [illegible]।

[illegible] कुछ [illegible] में [illegible] ने जैसे अपने-आप से कहा, "[illegible] भी [illegible] हो गया है, अल्लाह खैर करे !" और [illegible] ताँगे की [illegible] नहीं।

यद्यपि [illegible] थी, [illegible] और साँस लेना तक मुश्किल हो गया, तो भी [illegible] नहीं।

जब [illegible] (कम-से-कम मौलू को ऐसा ही मालूम हुआ) [illegible] का [illegible] आ गया और ताँगे वाले ने कहा अगर जल्दी चढ़ना चाहते हो तो यहीं उतर जाओ, क्योंकि यहाँ से मोटर जल्दी मिलती है, तो मौलू के दिल को गहरा धक्का लगा।

"अड्डा आ गया ?" उसने पूछा।

"अड्डा तो आगे है, लेकिन यहाँ से जल्दी मोटर मिल जाएगी। अड्डे पर बहुत देर बैठना पड़ेगा, वहाँ और लोग भी होते हैं और आजकल ट्रैफ़िक पुलिस भी बहुत सख्त हो गई है।"

ट्रैफ़िक पुलिस क्या बला है, यह बात तो मौलू की समझ में बिलकुल नहीं आयी। उसने भ्रू भंग करके ताँगे वाले की ओर देखते हुए कहा, "ये चालाकियाँ मैं सब समझता हूँ।"

किन्तु जब ताँगे में बैठी हुई दो सवारियाँ वहीं उतर पड़ीं और जब दूसरों ने भी कहा कि अगर लारी जल्दी पकड़नी है तो यहीं उतर पड़ो, तो वह भी उतरा, किन्तु सड़क पर पाँव रखते ही वह गरजा, "बस यहीं तक लाने के तुम बारह आने माँगते हो !"

ताँगे वाले ने बेपरवाही से कहा, "तुम्हारी मरज़ी है, तुम अड्डे तक चले चलो !"

मौलू का जी चाह रहा था, इस पाजी ताँगे वाले को उतार कर

सड़क पर पटक दे। उसने चीखकर कहा, "तुम लुटेरे हो!"

ताँगे वाले ने हण्टर उठाया, "जबान सँभालकर बात करो, मियाँ!"

तभी बीबी ताँगे से उतरकर दोनों के मध्य आ खड़ी हुई, "तैश में न आओ भाई, हम पैसे मारकर न ले जाएँगे, आदमी-आदमी तो देख लिया करो तुम!"

मौलू कोई बड़ी अश्लील गाली देने लगा था, पर यह सुनकर गाली देने के बदले उसने वही काले स्याह, अड़तालीस पैसे ताँगे वाले के हाथ पर गिन दिए और अहीदी भाव से बच्चों को उतारने लगा।

"बारह आने तो इसे दे दिए, अब वहाँ किस तरह काम चलेगा?" जाते ताँगे की ओर देखते हुए बीबी ने जैसे अपने-आप में कहा।

मौलू चीखकर कुछ कहने ही लगा था कि उसकी दृष्टि अपने नन्हे बच्चे की ओर चली गई, जिसका स्याह चेहरा ज्वर के वेग से और भी स्याह हो रहा था। उसने उसके माथे पर हाथ रखा, कुरता उठाकर पेट को देखा, "बदन तो इसका जल रहा है।" उसने कहा और फिर आती हुई एक मोटर से उन्हें बचाने के लिए अपने बीबी-बच्चों को एक तरफ कर, वह उन्हें किनारे पर लगे हुए शीशम के साए में ले चला।

"अरे मौलू, तुम किधर?" आश्चर्य से पेड़ के नीचे बैठे हुए एक व्यक्ति ने पूछा।

"अरे भाई, हसन के लड़के की शादी में लाहौर जा रहा था," मौलू ने निराशा-भरी आवाज़ में कहना शुरू किया, "रास्ते में लड़के को बुखार ने आ दबाया।"

"कहाँ जा रहे हो वहाँ लाहौर में?"

"मुज़ंग में हसन रहता है, वहीं जाना होगा। न हुआ भाड़े ताँगा कर लेंगे, तीन-चार आनों की तो बात है, दो भाई दे देंगे"।

"तीन-चार आने!" वह हँसा, "तुम लाहौर कभी गये नहीं, एक रुपये से कम में वहाँ ताँगा न जाएगा।"

मौलू ने बड़ी निराश दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा, जो शायद यह कहती थी कि एक रुपये की मिठाई हसन के बच्चों के लिए

भी लेनी है और फिर वापस आने के लिए भी पैसे चाहिएँ और बीबी की निगाहें शायद कह रही थीं कि मुए तांगे वाले ने यों ही हमारे बारह आने ठग लिए।

"तुम किधर आये थे नवाब?" मौलू ने पूछा।

"[illegible] की बोरियाँ स्टेशन पर छोड़कर आ रहा हूँ।"

"तो अब वापस जा रहे हो?"

"चला ही जा रहा हूँ, यों ही जरा दम लेने के लिए रुक गया था।"

तब फिर मौलू ने बीबी की ओर और बीबी ने मौलू की ओर देखा और मौलू ने कहा, "क्या कहूँ यार, बच्चों को बुखार ने आ दबाया है। हन्नू ने तो बहुतेरा लिखा था कि बीबी-बच्चों के साथ आना, लेकिन यहां तक आते-आते बच्चे बीमार हो गए, लहरां का पांव जख्मी हो गया है, फ़ज्जे और चिराग़ का पिण्डा गरम तवा बना हुआ है, सोचता हूँ, वहां कहीं तकलीफ बढ़ न जाए! शादी का मामला है, खाने-पीने में परहेज रहता नहीं, और फिर वहां वह बात थोड़े ही है जो घर में है। डाक्टर"···

"ये डाक्टर तो अच्छे-भले को बीमार कर देते हैं।" नवाब ने कहा।

"अरे बाबा उन तक हमारी पहुंच कहां?" और फिर एक बार अपनी पत्नी की ओर देखकर उसने नवाब से कहा, "तुम एक मेहरबानी करो नवाब, इन सबको ले जाओ। मुझे तो जाना ही होगा। कल बारात चढ़ेगी।" और फिर उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने बीबी-बच्चों को बैलगाड़ी पर चढ़ने का आदेश दिया।

नवाब गाड़ी पर आ बैठा।

"रास्ते में भीलोवाल के निरंजनदास हकीम से कुछ दारू लेती जाना।" उसने गाड़ी के पीछे चलते हुए अपनी पत्नी से कहा।

तभी दूर सड़क पर अमृतसर की ओर से एक लारी आती हुई दिखाई दी।

मौलू ने जल्दी-जल्दी अपने बच्चों का प्यार लिया ··· जलते

हुए मस्तक को चूमा, "हम तुम्हारे लिए बूट लाएँगे।"

लहरों के सिर पर हाथ फेरा, "तुम्हारे लिए जूता लाएँगे।"

रहमों को डाँटा कि बच्चों का खयाल रखना और माँ से लड़ना नहीं।

फिर वह गठरी उठाए भागा हुआ-सा सड़क पर आ खड़ा हुआ और उसने आती हुई लारी को रोकने के लिए हाथ बढ़ा दिया।

काले साहब

डी॰ एम॰ की कोठी से बाहर निकलकर श्रीवास्तव ने रिस्टवाच की ओर देखा। आठ बजे थे। उसके पास पूरा एक घंटा था। चपरासी ने डी॰ एम॰ के नौ बजे वापस आने की बात कही थी। तो क्यों न वह गजानन को इलाहाबाद में अपने शुभागमन का सुसमाचार दे आए! 'एक पंथ दो काज' में उसका सदा विश्वास रहा था; बल्कि यदि किसी पंथ में दो के बदले चार काज हों तो वह उन सबको एक साथ निबटाने से कभी न चूकता था। यही कारण था कि छः-सात वर्ष पहले तीस-चालीस रुपये मासिक से उन्नति कर वह इस थोड़े-से अरसे में डिप्टी-कलक्टर हो गया था। न केवल यह, बल्कि डिप्टी कलक्टर होने के बाद इसी चुस्ती और चालाकी के बल पर वह सूने और बीहड़ जिलों को फलाँगता हुआ इलाहाबाद आ नियुक्त हुआ था। आज ही प्रातः इलाहाबाद में उसका पदार्पण हुआ था और आज ही वह अपने अफ़सर के यहाँ हाज़िरी देने जा पहुँचा था। पर डी॰ एम॰ लखनऊ से दौरे

दुरवस्था के मसले जाने का उसे भय था, और डी० एम० से मिलने तक वह इसी प्रकार तक-दक बना रहना चाहता था। रिक्शा पर वह इस प्रकार अकड़ा बैठा था जैसे डी० एम० से हाथ मिलाकर अभी-अभी कुरसी पर बैठा हो—सीधा, अकड़ा और चाक-चौबन्द।

रिक्शा वाला खाकी सूट पहने था। सूट बहुत मैला भी न था। शक्ल से भी वह साधारण रिक्शा वाला न मालूम होता था। इलाहाबाद के रिक्शा वालों में देहातियों का बाहुल्य रहता है। फसल का मौसम न हो और काम से छुट्टी हो तो निकटवर्ती गाँवों के देहाती अपने लम्बे-तगड़े शरीर पर खादी की बड़ी और कमर में अँगोछा बाँधे, मुट्ठी में एक जून का राशन लिये इलाहाबाद की ओर चल पड़ते हैं। संध्या को पहुँचते हैं, रात के लिए रिक्शा लेते हैं और सवारियों से पैसा पैदा करके ही दूसरे जून के सत्तू खरीदते हैं। इन्हीं रिक्शा वाले देहातियों की सुविधा के लिए बहुत से पनवाड़ियों ने पान, बीड़ी, सिगरेट के साथ सत्तू के थाल भी सजा रखे हैं, जिनके पिरामिडों में हरी मिर्चें खूब अजब बहार देती हैं। ये देहाती रिक्शा वाले रिक्शा चलाते-चलाते जब ज़रा समय पाते हैं तो सेर-आध सेर सत्तू ले, उन्हीं की थाली में गूँध लौंदा-सा बनाकर हाथ पर रख लेते हैं और मिर्चों की सहायता से निगलकर पास के किसी नल से दो घूँट पानी पी लेते हैं।

कहते हैं कि गीदड़ की मौत आती है तो वह नगर की ओर भागता है। उस गीदड़ और इन देहातियों में कोई विशेष अन्तर नहीं। दिन-दिन-भर और कई बार दिन और रात-भर रिक्शा चलाकर जहाँ वे साल-साल-भर का लगान कमाकर ले जाते हैं, वहाँ फेफड़ों को भी खोखला कर जाते हैं।

दूसरे रिक्शा वाले इलाहाबाद ही के ऐसे नागरिक मज़दूर हैं जो द्वितीय युद्ध के बाद बेकार हो गए हैं। रिक्शा चलाते-चलाते उनकी पसलियाँ निकल आई हैं। यक्ष्मा उनकी आँखों से झाँकता है, तो भी वे महँगाई के इस ज़माने में बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए रिक्शा

मुस्कान मानो कह रही थी कि सेना की नौकरी-जैसा निकृष्ट काम हम क्या करते !

"तो क्या रिक्शाएँ चलाते हो ?" श्रीवास्तव का मतलब था कि चार-छः रिक्शा रखकर क्या उनकी आमदनी खाते हो ?

रिक्शा वाला हँसा। "अजी साब कहाँ ! यहाँ तो यह रिक्शा भी अपना नहीं ; किराये पर लेकर चलाते हैं "

श्रीवास्तव को उसके स्वर में सभ्यता की यथेष्ट मात्रा मिली। उससे उसे सहानुभूति हो आई। "तो ऐसा जान-मारू काम तुम काहे को करते हो ?" उसने कहा, "रिक्शा चलाने से तो फेफड़ों पर बड़ा ज़ोर पड़ता है। दिन-रात हल और फावड़ा चलाने वाले देहाती तो खींच सकते हैं इन्हें, तुम्हारे-जैसे शहरियों के बस का यह काम नहीं।"

"जी, हम क्या अपनी इच्छा से चलाते हैं ? बीबी है, तीन-चार बच्चे हैं, माँ है, दो विधवा बहनें हैं। इतने बड़े कुटुम्ब का खर्च अकेले हमीं पर है।"

"तुम कोई और काम क्यों नहीं कर लेते ?"

"हमको दूसरा कोई काम आता नहीं साब !"

"तो क्या तुम सदा से रिक्शा चलाते हो ?"

"जी नहीं साब, जब से देस को आजादी मिली है।" रिक्शा वाले ने रिक्शा चलाते-चलाते दाएँ हाथ से माथा ठोका और बोला, "अंग्रेज यहाँ से गये, काले साहब उनकी जगह आये कि हमारी क़िस्मत फूटी ! देसी साहबों को न हमारे काम की समझ न परख। न हम उनके काम के न वे हमारे। हमने तो अरजी दी थी कि हमको कोई दूसरा काम नहीं आता, हमको उन्हीं के साथ विलायत भेज दीजिए, पर किसी ने हमारी नहीं सुनी।"

"तब क्या करते थे तुम ?"

"हम कमिस्नर 'ड्रक' के यहाँ काम करते थे। पचास रुपया महीना पाते थे, रहने के लिए दो कमरे थे, कपड़े साब देते थे। माफ

कीजिएगा…" और रिक्शावाला बात कहते-कहते संकोच से तनिक रुका।

"हाँ-हाँ, कहो।" श्रीवास्तव ने फिर अकड़कर बैठते हुए कहा।

"यह जो वरदी आपने पहन रखी है," रिक्शा वाले ने पीछे को मुड़कर बड़े गर्व से कहा, "ऐसी तो साब के यहाँ हम पहना करते थे।"

श्रीवास्तव फिर सीधा होकर बैठ गया। पीठ भी उसकी पीछे लग गई और मूड के बिगड़ जाने का भी उसे ध्यान न रहा।

"अंग्रेजों के राज में जो मौज थी, वह अब कहाँ!" रिक्शा वाला कहता गया, "दिन त्योहार पर इनाम मिलते थे। हमारे ही नहीं, बीबी-बच्चों तक के कपड़े बन जाते थे। अब बताइए, इतना हम कहाँ पाएँ? कैसे बीबी-बच्चों का तन ढकाएँ? मजबूरन रिक्शा चलाते हैं, एक मुसीबत है, किसी दिन इसी तरह टपक जाएँगे।"

"पर आखिर बात क्या है, तुम किसी देसी साहब के यहाँ काम क्यों नहीं करते? कमिश्नर की जगह कमिश्नर है और कलक्टर की जगह कलक्टर!"

रिक्शा वाले ने रिक्शा चलाते-चलाते फिर पीछे की ओर तनिक देखा, "देसी साब हमें क्या खाकर रखेंगे!" वह बोला और उसके ओठों पर वही व्यंग्य-उपेक्षा-भरी मुस्कान फैल गई।

"क्या करते थे तुम कमिश्नर डक के यहाँ?" श्रीवास्तव ने उत्सुकता-मिली झल्लाहट से पूछा, "कुक थे?"

"जी नहीं, खानसामागीरी हमसे नहीं होती।"

"तो क्या करते थे, बैरा थे?"

"जी हाँ, बैरा थे।"

श्रीवास्तव फिर अकड़कर बैठ गया, "तो इसमें क्या बात है? तुम दूसरी जगह नौकरी कर सकते हो। हमारे ही यहाँ एक बैरा है।"

"जी नहीं, वैसे बैरा हम नहीं थे। हम खाना-वाना लाने का काम

नहीं करते थे। हम साब के कपड़े देखते थे।"

"हाँ-हाँ, कपड़े-वपड़े देखते होंगे, बूट-ऊट साफ करते होंगे।"

"जी नहीं बूट, तो भंगी साफ करता था। हम सिर्फ कपड़े देखते थे।"

"क्या देखते थे कपड़ों का सारा दिन ?"

"अब साब, आपसे क्या बताएँ, आप समझेंगे नहीं।" रिक्शा वाले ने जरा-सा मुड़कर मुस्कराते हुए कहा, "अंग्रेज लोगों की बड़ी बातें थीं। एक वक्त एक सूट पहनते थे। रात का अलग, दफ्तर का अलग, दिन के आराम का अलग, सैर-सपाटे का अलग, फिर डिनर-सूट, गोल्फ-सूट, पोलो-सूट, डांस-सूट, शिकार-सूट। उनको ठीक जगह पर रखना, धोबी को देना,-लेना, साब को पहनाना, यही हमारा काम था। देसी साब क्या समझें और परखें हमारा काम ? दिन-रात, महीनों-बरसों एक ही सूट घिसे जाते हैं। यही साब, जिनकी लाल कोठी के पास से होकर अभी हम निकले हैं, बड़े भारी अफसर हैं, पर कभी-कभी ऐसा सूट पहनते हैं, जो लगता है, कलिज के दिनों का सँभाले हुए है। जहाँ दफ्तर लगाते हैं, वहाँ बाल-रूम था। शनि की रात को क्या-क्या रौनकें होती थीं ! और बगीचा देखा आपने, उसकी क्या दुर्गति हुई है ! कभी अंग्रेज साब के जमाने में उसकी बहार देखते ! वही बगीचा क्या, यह सारी सिविल लाइन्स पड़ी अंग्रेज साहबों के नाम को रो रही है। इतने बड़े-बड़े बँगले, इतने बड़े-बड़े बागीचे, राँड़ के सिर की तरह मुँड़े दिखाई देते हैं।"

श्रीवास्तव को उस रिक्शा वाले की उपेक्षा और भारतीय रहन-सहन के प्रति उसका दुर्भाव बहुत बुरा लगा। यद्यपि वह स्वयं साहबी ठाठ-बाट से रहना पसन्द करता था, परन्तु उस समय उसे अंग्रेजी संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु के प्रति क्रोध हो आया। उस 'अमृत' को तनिक-सा 'विष' बनाने के विचार से उसने कहा, "उनके और अपने खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन में बड़ा अन्तर है। वे लोग मांस-मछली खाना, शराब पीना बुरा नहीं समझते। गाय और सूअर

का मांस खाते हैं। हमारे यहां उनको छूना भी पाप है, उनकी औरतें नाचती हैं, हमारे यहां . ."

"कुछ नहीं साब," रिक्शावाले ने उसकी बात काटकर और रिक्शा के पैडल पर अपने जोम में और भी जोर देते हुए कहा, "हम लोगों का देश गुलामों का देश है। घोंघे की तरह हम अपने-आप में बंद होकर रह गए हैं। गरीब होने से हमने गरीबी को स्वर्ग बना दिया है। धनी होने पर भी हम आदत से गरीब बने रहते हैं। रुपया बैंकों में जमा रखते हैं और दाल-रोटी पर सब्र करते हैं। हमको हमारा साब बताता था कि भारत जब आज़ाद था, जब आर्या (आर्य) लोग इस देश में आये थे तो वे भी खूब खाते-पीते, नाचते-गाते और मौज मनाते थे। न यह परदा था, न खान-पान के यह बन्धन थे। हमको हमारा साब बतात था कि धन का लाभ उसे खर्च करने में है, बैंक में जमा करने में नहीं। रुपया खर्च होता है तो देश के कारीगर, मजदूर, दुकानदार सब काम पाते हैं, नहीं तो बेकारी बढ़ती है। साब साल-के-साल फ़रनीचर और दरवाजों खिड़कियों पर रोगन कराते थे। छः महीने में वाइट वाश कराते थे। दो माली, दो बैरे, खानसामा, धोबी, भंगी उनके यहाँ नौकर थे। फिर उनके दम से डबल रोटी वाले, अंडे वाले, कुरसी-मेज़ वाले और न जाने कौन-कौन रोज़ी पाते थे . ."

श्रीवास्तव के हृदय में ज्वाला-सी लपकी। उसका जी चाहा कि वहीं उठकर उस 'साहब के कुत्ते' की गुद्दी पर जोर का एक घूँसा दे, लेकिन रिक्शा काफ़ी तेज़ चला जा रहा था। तब उसने अपना क्रोध अपने परवर्ती गोरे अफ़सरों पर निकाला।

"उन सालों का क्या है ? जनता को लूटते और मौज उड़ाते थे।"

"जनता को ये क्या कम लूटते हैं ?" रिक्शा वाले ने पलटकर बड़ी मिसकीन व्यंग्यमयी हँसी के साथ कहा, "छोटे से लेकर बड़े अफ़सर तक सब खाते हैं। वहाँ तो बड़े अफ़सर कुछ संकोच भी करते थे। यहाँ तो आपाधापी मची है। बस लेना जानते हैं, देना नहीं जानते। अंग्रेज लेता था तो दस आदमियों का पेट पालता था। ये खाते हैं तो

ामा करते हैं। खाएँ-उड़ाएँ भी क्या, आदत भी हो। वही धोती-कुरता हने बाहर-भीतर सब जगह बने रहते हैं। पन्द्रहवें-बीसवें, महीने-दो हीने पर हजामत बनवाते हैं। नाई, धोबी, बैरा, खानसामा क्या पाएँगे ससे ?"

श्रीवास्तव मन-ही-मन उमठ-सा गया, पर चुप बना रहा कि क्या इस कमीने के मुँह लगे !

"दूर क्यों जाइए," रिक्शा वाला अपनी रौ में कहता गया, "रिक्शे-ाँगे वालों को ही ले लीजिए। बड़े-से-बड़ा सेठ रिक्शा करेगा तो मोल-भाव करना न भूलेगा। यहीं एलनगंज में एक आनरेरी मजिस्ट्रेट रहते हैं, बड़े आदमी हैं। चौक में उनका एक प्रेस भी चलता है। हमेशा यहाँ अड्डे पर आ खड़े होते है और चाहते हैं कि एक ही सवारी के पैसे देने पड़ें। दूसरी सवारी न हो तो आध घंटे खड़े रहते हैं। अंग्रेज मामूली फ़ौजी भी हो तो कभी मोल-भाव न करता था। फिर जेब में रुपया हुआ तो रुपया दे दिया और दो हुए तो दो दे दिए। एक बार हमारे साब की मोटर बिगड़ गई थी। यहीं एलनगंज से कचहरी जाने में पाँच रुपये का नोट उन्होंने रिक्शा वाले को दे दिया था।"

गजानन का घर आ गया था। श्रीवास्तव उचककर उठा। परन्तु वहाँ जाकर मालूम हुआ कि वह है नहीं। अपना कार्ड छोड़, श्रीवास्तव मुड़ा और रिक्शा वाले से उसने कहा कि जल्दी से चले। कचहरी के सामने उतरते वक्त श्रीवास्तव ने घड़ी देखी। एक घंटा दस मिनट हुए थे।

दूसरा वक्त होता तो वह दस आने घंटे के हिसाब से बारह आने से अधिक न देता। पर इस रिक्शा वाले को बारह आने देने में उसे हिचकिचाहट हुई। साहबों की कब्र पर लात मारते हुए उसने कहा, "एक घंटे से कुछ ही मिनट ऊपर हुए हैं। दो घंटे भी लगाएँ तो एक रुपया चार आने होते हैं। पर यह लो दो रुपये। चौदह आने हमारी ओर से बख्शीश समझ लो।"

रिक्शा वाले ने लगभग फ़ौजी ढंग से सलाम किया और श्रीवास्तव

गर्व से मूँछों को तनिक और उठाता हुआ डी० एम० की कोठी की ओर चला।

"क्यों, क्या मिला ?"

पहले रिक्शा वाले ने, जो अभी तक अड्डे पर खड़ा था, जोर से पूछा।

"दो रुपये।"

"दो-रुपये-से !"

"हाँ दो रुपये किसी देसी अफसर से मैंने कभी कम लिया जो उससे लेता ! साले इन काले साहबों से निबटना ही मैं जानता हूँ।"

अंतिम वाक्य की भनक श्रीवास्तव के कानों में पड़ गई। उनकी उठी हुई मूँछें बैठ गईं। शरीर का तनाव और चाल की अकड़ कम हो गई और वह साधारण आदमियों की तरह चलता डी० एम० के बँगले में दाखिल हुआ।

कैप्टन रशीद

"मैं हनीफ़ के बारे में कह रही थी, अपनी इस नयी स्कीम में उसे क्यों नहीं ले लेते ?"

कैप्टन रशीद अपनी ट्यूनिक के बटन बन्द करते हुए अपने स्वभावानुसार कमरे में चक्कर लगा रहे थे। उनका मस्तिष्क अपने साप्ताहिक की कायापलट करने में निमग्न था। कल्पना-ही-कल्पना में उन्होंने नये, योग्य और अनुभवी सम्पादक चुन लिए थे। प्रेस को नया टाइप ढालने और हेड ऑफ़िस को बेहतर काग़ज़ सप्लाई करने पर विवश कर

दिया था। साप्ताहिक सुन्दर टाइप में, सुन्दर कागज पर छपने लगा था। उसमें चित्रों के पृष्ठ बढ़ गए थे। उसके सम्पादकों में अब आकाश-पाताल का अंतर आ गया था और सैनिकों के लिए वह पहले से कहीं अधिक उपयोगी हो गया था। तन्द्रावस्था में कानों के परदों से टकराने वाली अस्पष्ट ध्वनियों की भाँति उनकी पत्नी के शब्द उनके कान में पड़े। उनकी भवें तन गईं और कुछ मुड़कर आश्चर्य-मिश्रित क्रोध से उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा।

वह बिस्तर पर बैठी चाय बना रही थी। कैप्टन रशीद सुबह नौ बजे के बदले सदैव पौने नौ बजे दफ्तर पहुँच जाना चाहते थे। अफसर थे और उनका ख़याल था कि अफ़सरों को क्लर्कों से पन्द्रह मिनट पहले अपनी सीट पर होना चाहिए। वे सवा आठ बजे तैयार हो जाते। उन्हें अलार्म लगाकर सुबह उठना पड़ता और उनकी बेगम सोने के कमरे ही में चाय लाने का आर्डर दे देती। प्याले में चीनी डालते हुए बेगम के होंठों पर शिशिर की सकोचशील अरुणाभा की-सी मुस्कान फैली और मुख पर प्रार्थना-जनित लाली दौड़ गई। कनखियों से अपने पति की ओर देखते हुए, प्याले को चम्मच से हिलाते-हिलाते उसने फिर वही प्रार्थना दोहरानी शुरू की।

"मैं हनीफ के बारे में कह रही थी•••"

"तुम बेवकूफ हो।" कैप्टन रशीद ने असन्तोष से कहा। भवें सिकोड़ीं, मुँह बिगाड़ा, चाय का प्याला उठाया और फिर कमरे में चक्कर लगाने लगे।

उनकी बेगम चुपचाप उन्हें प्याला उठाए दीवार की ओर जाते देखती रही। उसकी दृष्टि अपने इस कप्तान पति के गंजे होते हुए सिर के पिछले, जरूरत से ज्यादा उभरे हुए भाग, पतली-सी गरदन और ढलवें कन्धों से पीठ और सिकुड़े हुए कूल्हों पर फिसलती उसके पाँवों पर आ टिकी। उसने देखा, उसके पति की चाल में काफ़ी अन्तर आ गया है। उसी दिन क्यों, जब से कैप्टन रशीद इस नये पद पर नियुक्त हुए थे, बेगम रशीद ने इस अंतर को देखा था। उनकी पतली-सी गरदन अब इस तरह

अकड़ी रहती थी, जैसे उनका पट्ठा चढ़ गया हो। चलते समय वे प्रायः अपनी एड़ियाँ उठा लेते थे और दीवार के पास पहुँचकर जब मुड़ते थे तो एक विचित्र गर्व और महत्त्व की अनुभूति से पञ्जों पर लट्टू की तरह घूम जाते थे।

कैप्टन रशीद की चाल ही नहीं, उनके स्वभाव तक में अंतर आ गया था। उनकी दृष्टि, जो पहले कुछ अजीब-सी पीड़ित, आकुल, उदास और झुकी-झुकी-सी रहती थी, अब कुछ ऐसी तेज हो गई थी जैसे अपने सामने किसी दूसरे को कुछ भी न समझती हो। बातचीत करते समय प्रायः दूसरे को मूर्ख समझकर वे एक विचित्र व्यंग्य से मुस्करा देते थे या अत्यन्त उपेक्षा से होंठ सिकोड़ लेते थे।

कुछ क्षण बेगम रशीद अपने पति को प्याले से चुस्की लेते और घूमते देखती रही। अपनी खाला के दामाद और अपनी सहेलियों-सी बहन के पति को अपनी नई स्कीम में लेने की प्रार्थना कर उसके पति ने बे-माँगे जो उपाधि उसे दे दी थी, उस पर उसे क्रोध नहीं आया। कैप्टन रशीद ने पहले-पहल जब वरदी पहनी थी तो उसके दोनों जेठ उन्हें देखकर हँसा करते। बड़े जेठ एक विचित्र व्यंग्यमयी मुस्कान से कहा करते, 'भाई कैसे-कैसे जवाँ मर्द फ़ौज में भरती हो रहे हैं आजकल !' और छोटे उन्हें देखते ही यह शेर गुनगुनाना शुरू कर देते :

तस्वीर मेरी देखकर कहने लगा वो शोख़,
यह कारटून अच्छा है अख़बार के लिए !

और जेठानियाँ यह सुनकर हँसी को रोकने के लिए मुँह में दुपट्टे ठूँस लेतीं और वह स्वयं लज्जा के मारे सिर झुका लेती। यही कारण था कि अब अपने पति की सफलता, उसकी तनी हुई गरदन, उसका भ्रू-भंग और उसकी तुनकमिज़ाजी देखकर उसे एक प्रकार का सन्तोष ही होता। उसे अच्छी तरह मालूम था कि अब उसका छोटा जेठ अपना शेर भूल गया है और बड़े जेठ को भी अपने इस तिनके-से भाई की सफलता को देखकर शरम आने लगी है। आखिर उसके पति ने अपनी योग्यता का सिक्का जमा दिया था ! उसने जो कहा था, कर दिखाया

था। अपने खानबहादुर पिता की सिफ़ारिश के बिना, केवल अपने परिश्रम, योग्यता और दयानतदारी के बल पर कैप्टन बना और इस नये पद के लिए चुना गया। उसके कानों में अपने पति के वे शब्द गूँज जाते जो उसने अपनी नियुक्ति के समय कहे थे, 'मैं ही पहला हिन्दुस्तानी हूँ, जिसे इस आसामी के लिए चुना गया है, नहीं आधी सदी हो गई इस अख़बार को निकलते हुए, कभी कोई हिन्दुस्तानी इसका एडीटर नहीं बना।'

उनकी बेगम ने गर्व से अपने पति की ओर देखा। कैप्टन रशीद ने प्याला ख़त्म करके तिपाई पर रख दिया था और बिस्कुट दाँतों में लिये घूमने लगे थे। प्याले की बची हुई चाय खाली प्लेट में उँडेलते हुए बेगम रशीद ने फिर घुमा-फिराकर हनीफ़ की बात चलाई :

"आपा शमीम चाहे हमारी ज़रा दूर की रिश्तेदार होती हैं," उसने कहा, "पर आप जानते हैं, मैं उन्हें कितना मानती हूँ। हम दोनों में बहनों से ज़्यादा मुहब्बत रही है।"

वह क्षण-भर के लिए रुकी। कैप्टन रशीद पूर्ववत् घूमते रहे। बेगम ने फिर कहा :

"खाला शमीम के बारे में परेशान हैं। चार बरस उसकी शादी को हो गए। घर में दो-दो बच्चे हैं, लेकिन भाई हनीफ़ को अभी तक कोई अच्छी नौकरी ही नहीं मिली।"

वह फिर निमिष-भर के लिए रुकी। उसने दूसरे प्याले में चाय डाली। कैप्टन रशीद निरन्तर घूमते रहे। उनकी भवें तन गईं, जिससे उनके मस्तक पर नाक की सीध में एक आड़ी लकीर बन गई, चलते समय पैरों पर उनके शरीर का बोझ बढ़ने लगा। बेगम ने अपनी बात जारी रखी :

"इस महँगाई के ज़माने में साठ रुपये से तो एक आदमी की रोटी भी नहीं चलती," उसने लम्बी साँस भरी, "फिर आपा शमीम के दो-दो बच्चे, सास और ससुर हैं।"

वह प्याले में चीनी हिलाने लगी। कैप्टन रशीद भी अब उत्तर ने

न दिया । उनके होंठ भिंच गए और दृष्टि में उपेक्षा की लकीर और भी स्पष्ट हो गई, किन्तु एक तो उनका मुख अपनी बेगम की ओर न था, दूसरे वह चीनी मिलाने में निमग्न थी, इसलिए उनकी बात का जो प्रभाव उनके पति की आकृति पर हो रहा था, उसकी ओर ध्यान दिए बिना प्याले में चम्मच हिलाते-हिलाते बेगम अपनी बात कहती रहीं :

"जिनको अंग्रेजी की ए-बी-सी तक नहीं आती वे तो आजकल दो-दो सौ रुपया पा रहे हैं। हनीफ़ भाई तो बी० ए० ऑनर्स हैं, लेकिन वे लोग गरीब हैं और सिफ़ारिश उनकी..."

अब कैप्टन रशीद के लिए अपने-आप को रोकना कठिन हो गया 'ओ बेवकूफ़ औरत !' उन्होंने दिल-ही-दिल में भिनभिनाते हुए कहा, 'क्या मैंने किसी की सिफ़ारिश से यह नौकरी हासिल की है ? मेहनत, लियाकत और दयानतदारी, दुनिया में यही कामयाबी की कुंजी है। मैंने यह स्कीम हनीफ़-जैसे मूर्ख, निकम्मे, कामचोर और नाक़ाबिल आदमियों के लिए नहीं बनाई। मुझे तजरबेकार, मेहनती और इनिशियेटिव (Initiative)[1] लेने वाले जर्नलिस्ट चाहिएँ।'... लेकिन हमजुल्फ़[2] की शान में प्रकट उन्होंने कुछ नहीं कहा। उपेक्षा-मिश्रित दया से भरी एक दृष्टि उन्होंने अपनी इस वज्र-मूर्खा पत्नी पर डाली। घड़ी में समय देखा। आठ हो गए थे। "मुझे जर्नलिस्टों की जरूरत है, क्लर्कों की नहीं," सिर्फ़ इतना कहकर, दूसरा प्याला पिए बिना वे बाहर निकल गए।

उनकी पत्नी निराशा से वहीं-की-वहीं बैठी रही। यद्यपि चीनी कब की हल हो गई थी, पर वह विफल उसमें चम्मच हिलाती रही।

कैप्टन रशीद अपने मिलिट्री काण्ट्रेक्टर (खानबहादुर) बाप के तीसरे और सबसे छोटे पुत्र थे। अपने दोनों भाइयों की अपेक्षा वे कुछ

---

१. स्वयं अपनी बुद्धि से कोई काम करने वाले।
२. साली का पति।

काय थे, किन्तु उनका मस्तिष्क अपने भाइयों के मुकाबले बड़ी तेज़ी से काम करता था। खेल-कूद में पिछड़ जाने पर भी वे इन दोनों 'बैलों' को (उपेक्षा से दिल-ही-दिल में वे उन्हें हराम का माल खा-खाकर पले हुए बैल कहा करते थे।) कहीं पीछे छोड़ देने के स्वप्न देखा करते थे। यही कारण था कि जब उनके दोनों भाई उचित या अनुचित ढंग से कमाई हुई अपने पिता की सम्पत्ति को उचित या अनुचित ढंग से ठिकाने लगाने में निमग्न थे कैप्टन रशीद जी-जान से शिक्षा-प्राप्ति में रत थे। कालिज की शिक्षा समाप्त करके उन्होंने पत्रकार-कला की शिक्षा ली थी और अभी मुश्किल से उन्होंने जर्नलिज़्म का कोर्स पूरा किया था कि उन्हें कमीशन मिल गया। यद्यपि इस पद के लिए उनके निर्वाचन की तह में खानबहादुर का रसूख ही काम करता था, पर कैप्टन रशीद इसका कारण अपनी योग्यता ही समझते थे और उन्हें इस बात का सन्तोष था कि वे पूर्णतया इस पद के योग्य हैं।

यह साप्ताहिक, जिसके सम्पादक बनकर वे आये थे, उन अनगिनत सैनिक पत्र-पत्रिकाओं की तरह न था जो द्वितीय महायुद्ध में बरसाती कुकुरमुत्तों की भाँति उग आए थे। चालीस-पचास वर्ष पहले अफ़गानिस्तान के कबाइली इलाके में लड़ने वाले सैनिकों के हितार्थ इसका सूत्रपात किया गया था और उस समय, जब कैप्टन रशीद ने इसकी बागडोर अपने हाथ में सँभाली, यह छः-सात भाषाओं में निकलता था।

साधारण समाचार-पत्रों तक सैनिकों की पहुँच नहीं होती। घर से सहस्रों योजन दूर, जंगलों, पहाड़ों, बीरानों और रेगिस्तानों में उन्हें लड़ना पड़ता है और यद्यपि उस समय भी उनके बेकार समय को खेल-तमाशों से भरने का भरसक प्रयत्न किया जाता था, फिर भी किसी ऐसे मुख-पत्र की आवश्यकता अनुभव की गई जो उन, लगभग अपढ़, सिपाहियों की ऐसी घड़ियों को भर सके जो शारीरिक श्रम, खेल-कूद, गप-शप के बाद उन पर भारी बन जाती हैं, जब उन्हें घर की, बाल-बच्चों की (बाल-बच्चों से प्रिय खेत-खलिहानों की) याद

मित्र-विभाग को भेज दिया गया।

मित्र-विभाग ने पहले-पहल केवल चार सेक्शनों के लिए सब-एडीटर रखने की स्वीकृति दी और कहा कि यदि इससे समाचार-पत्र में कोई विशेष अन्तर दिखाई दिया तो शेष दो सेक्शनों के लिए भी सब-एडीटर रखने की स्वीकृति दे दी जाएगी।

सरदियों के दिन थे। भोर यद्यपि आठ बज चुके थे, किन्तु धूप जैसे इस शीत में जागते हुए डर रही थी और इर्द-गिर्द की कोठियों के मालिकों की भांति कहीं धुन्ध की सेज पर लिहाफ़ ओढ़े सो रही थी। आकाश की निद्रालस आंखों में अभी रात की खुमारी थी, किन्तु धरती जाग चुकी थी। दोनों ओर की कोठियों में यूकलिप्टस, जामुन, शिरीष, आम, नीम के वृहत् पेड़ों की अपेक्षाकृत नंगी डालियां आकाश की निंदासी आंखों को चूम रही थी। ठण्डी हवा चल रही थी और पेड़ों के पत्ते सड़क और फुटपाथों पर उड़ रहे थे।

कैप्टन रशीद की आंखें न उस समय आकाश का खुमार देख रही थीं, न धरती की मस्ती; वे तो अपने सामने अपने पत्र को चोला बदलते हुए देख रहे थे। उनकी कल्पना में तो उनका पत्र सांप की तरह अपनी पुरानी केंचुली उतारकर नई बदल रहा था। अपने दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाले वे अपने मस्तिष्क में उन चार आसामियों के चुनाव-हेतु आने वाले प्रार्थियों से इण्टरव्यू कर रहे थे।

आसामियां यद्यपि चार ही थीं, किन्तु उनके लिए (युद्ध-काल में बेकारों का अभाव होने के बावजूद) अगनित आवेदन-पत्र आये थे। कैप्टन रशीद ने उनमें से केवल बीस को इण्टरव्यू के लिए बुलाया था। हर सेक्शन के लिए उन्होंने पांच-पांच दरख्वास्तें चुन ली थीं। इन प्रार्थियों में से कुछ प्रतिष्ठित पत्रों में काम करते थे। उनकी योग्यता और अनुभव से वे स्वयं परिचित थे। यही कारण था कि चुनाव में उन्हें कठिनाई-सी हो रही थी। कल्पना-ही-कल्पना में वे कभी इसको और कभी उसको चुनते हुए दफ्तर पहुंचे।

दफ्तर को झाड़-पोंछकर चपरासी उनकी प्रतीक्षा में एक स्टूल पर

बैठा था। उनके पहुँचते ही एकदम खड़े होकर उसने उन्हें फ़ौजी सलाम किया।

कैप्टन रशीद ने उसके सलाम का उत्तर नहीं दिया। अपने विचारों में मग्न वे कुरसी पर जा बैठे। कुरसी को छूते ही जैसे वे चौंके और उन्होंने घण्टी पर हाथ मारा—'टन!'

मानो रबड़ के तार से खिंचा हुआ चपरासी आ उपस्थित हुआ।

"पण्डितजी को सलाम दो!" पत्र का ताज़ा ऐडीशन उठाते हुए कैप्टन रशीद ने आदेश किया।

अपने अफ़सर को समय से पहले आते देखकर जो क्लर्क उससे भी पहले आने लगे थे, उनमें पंडित किरपाराम सबसे आगे थे। पचपन वर्ष की बेफ़िक्री और बेकारी के कारण मोटा थलथल-पिलपिल शरीर,गंजा सिर और अगले दाँतों से वंचित मुँह-इस पत्र के दफ़्तर में वे एक नवयुवक क्लर्क के रूप में आये थे और समय-समय पर हिन्दी, उर्दू, गुरुमुखी तीनों सेक्शनों के ट्रान्सलेटर और फिर इंचार्ज रह चुके थे। अनुवाद-कला में उन्हें योग्यता प्राप्त हो, यह बात न थी। योग्यता प्राप्त होना तो दूर रहा, वे तो इस कला से नितान्त अनभिज्ञ थे, किन्तु उन्हें उस कला में पूरी-पूरी निपुणता प्राप्त थी जो प्रायः सरकारी दफ़्तरों में एक क्लर्क को दूसरों से आगे निकल जाने में सहायता देती है। अनुवाद तो उनके दूसरे मन्द-भाग्य साथी करते थे। उनका काम तो साहब के लिए टैक्सी, राशन, पैट्रोल, मुर्गे-मुर्गियों से लेकर साहब की मेम के लिए पाउडर, रूज, क्रीम और ऐसी ही अनगिनत दूसरी चीज़ें जुटाना होता। सुबह आते समय और सन्ध्या को जाते समय वे नियमित रूप से साहब को सलाम करते, जब साहब हैड ऑफ़िस जाते तो वे प्रायः उनकी अर्दल में जाते, नहीं तो कम-से-कम कार तक छोड़ने ज़रूर जाते और जब साहब वापस आते तो वे उन्हें कार से लेने अथवा हैड ऑफ़िस का हाल-चाल जानने अवश्य पहुँचते। साहब की मुस्कान पर खीसें निपोर देना और परेशानी पर भवें चढ़ा लेना उन्हें खूब आता था। अपने इन्हीं गुणों की बदौलत वे धीरे-धीरे उन्नति पाते हुए सेक्शन के इंचार्ज हो गए थे।

इससे पहले कि चपरासी उन्हें साहब का सलाम देने आता, वे दाँत निपोरते हुए स्वयं साहब को सलाम करने जा पहुँचे ।

साहब ने उनके सलाम का उत्तर जरा-सा सिर हिलाकर दिया। मुस्कान का उत्तर देना शायद उसने उचित नहीं समझा ।

इस गोरे देसी साहब के मनोविज्ञान को समझने में सर्वथा असफल रहने के कारण पण्डितजी कैलाश मिश्रा से किंचित् झेंपकर खड़े रह गए ।

"आज कितने लोग इन्टरव्यू के लिए आ रहे हैं ?"

पण्डितजी फाइल लेने भागे ।

कैप्टन रशीद ने अखबार का ताजा एडीशन उठाया । पहले पृष्ठ पर ही टाइप की इतनी गलतियाँ थीं कि उनका खून खौल उठा । यह देख वे प्रेस के मालिक को फोन करने ही वाले थे कि टेलीफ़ोन की घण्टी बजी ।

"हैलो !" चोंगा उठाते हुए उन्होंने कुछ असन्तोष के स्वर में कहा।

दूसरी ओर उनके पिता थे ।

"छुट्टू," उनके स्वर को पहचानकर खानबहादुर बोले, "तुमसे शायद तुम्हारी अम्मा ने कहा होगा, बेटा जरा हनीफ़ का खयाल रखना । कल वह मेरे पास आया था । वह अपना रिश्तेदार भी है और फिर ..."

"लेकिन अब्बा जान, आप क्या कहते हैं ?" कैप्टन रशीद ने अपने पिता की बात काटकर कहा," हनीफ़ तो इस पोस्ट के बिलकुल नाक़ाबिल है ।"

"नाक़ाबिल," दूसरी ओर से खानबहादुर बोले, "बी० ए० ऑनर्स है ।"

"बी० ए० आनर्स होने से कोई जर्नलिस्ट तो नहीं बन जाता, अब्बा-जान ! मुझे तजरबेकार जर्नलिस्टों की जरूरत है, जो अखबार की काया-पलट दें । हनीफ़ को तो जर्नलिज्म की ए-बी-सी का भी इल्म नहीं ।"

"अरे भाई सीख लेगा । कौनसी चीज़ है जो मेहनती आदमी···"

अपने पिता के हठ पर कैप्टन रशीद की भृकुटी तन गई। पर बड़ी कठिनाई से अपने-आप पर संयम रख, पिता की बात काटते हुए उन्होंने कहा, "यह अखबार का दफ्तर है अब्बाजान, जर्नलिज्म का स्कूल नहीं। मै नाकाबिल एडीटर ले लूँगा तो अफसर क्या कहेंगे! हनीफ दूसरों के साथ किस तरह अपनी चाल कायम रख सकेगा? जिन ट्रान्स-लेटरों का उसे अफ़सर बनाया जाएगा, वे अपने दिल में क्या खयाल करेंगे, सभी हँसेंगे!"

"सरकार के दफ्तरों मे एक-से-एक बढ़कर बेवकूफ भरे पड़े है।" अनुभवी खानबहादुर बोले।

"आप मुझसे बद-दयानती करने को कहते है!" कैप्टन रशीद गरजे। उनकी आवाज इतनी ऊँची उठ गई कि परले कमरे में क्लर्क दम साधकर बैठ गए।

"तुम तो बेवकूफ हो!" और यह कहकर उनके पिता ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया।

ठक से चोंगे को फोन पर रखकर कैप्टन रशीद उठे। इन्टरव्यू में आने वाले प्रार्थियों की फाइल उनके सामने खोलकर पण्डित किरपाराम खड़े मुस्करा रहे थे। कैप्टन रशीद ने अंगारे-सी आँखों से उनकी ओर देखा और मुस्कान मानो पंडितजी के ओठों पर पीली पड़ गई।

"तो…तो…मै…"

"आप जा सकते है।"

और यह कहकर ट्यूनिक के दोनों कॉलरों को दोनों हाथों से पकड़े कैप्टन रशीद कमरे में चक्कर लगाने लगे।

घूमते-घूमते उनके सामने प्रेस के मालिक खानबहादुर और अपने खानबहादुर पिता का चित्र खिंच गया और अपने खानबहादुर पिता का सब क्रोध प्रेस के मालिक खानबहादुर पर निकालने के लिए, जो पत्र की निकृष्टतम छपाई करता था, उन्होंने फिर चोंगा उठाया, लेकिन तभी बाहर मेजर सलीम की मोटर आकर रुकी और दूसरे क्षण मेजर सलीम अपनी अलसाई हुई मुस्कान ओठों पर लिये एक युवक के साथ अन्दर

शामिल हुआ।

कैप्टन रशीद ने [illegible] उन्हें फ़ौजी सलाम किया। यद्यपि मेजर सलीम से उनका सम्बन्ध लगभग मित्रों-जैसा हो गया था, किन्तु कैप्टन रशीद सैनिक डिसिप्लिन के अनुसार उन्हें अब भी सलाम ही किया करते थे।

मेजर सलीम हँसे। "आप भी रशीद साहब बस···" और उन्होंने सलाम का जवाब देने के बदले हाथ बढ़ा दिया। "बैठिए, बैठिए!" उन्होंने अपनी मनभाई-सी मुस्कान से कहा, "इतना तकल्लुफ़ न कीजिए।" और इससे पहले कि कैप्टन रशीद अपनी कुरसी पर बैठते, उन्होंने अपने साथी का परिचय देते हुए कहा, "ये हैं मि० ज्योति स्वरूप भार्गव बी० ए०। हिन्दी के जाने-माने लेखक और जर्नलिस्ट हैं। उर्दू भी जानते हैं। कई अख़बारों में काम कर चुके हैं और कई किताबें लिख चुके हैं। कुछ दिन अख़बार के हिन्दी-एडीशन में ये आपकी मदद करेंगे।" मेजर साहब ने घण्टी बजाई और चपरासी से पण्डितजी को सलाम देने के लिए कहा।

लेकिन पण्डितजी तो मोटर देखकर स्वयं ही मेजर साहब को सलाम देने चले आ रहे थे।

"पंडितजी, ये हैं मिस्टर ज्योति स्वरूप भार्गव बी० ए०," मेजर साहब बोले, "ये कुछ दिन हिन्दी के काम में मदद देंगे।"

और उन्होंने श्री भार्गव से पण्डितजी के साथ जाने को कहा।

जब दोनों चले गए तो मेजर सलीम बोले, "ये कर्नल चोपड़ा के आदमी हैं। आप किसी तरह इन्हें अपने यहाँ रख लीजिए। आदमी लायक हैं, आपको किसी तरह की तकलीफ़ न होगी।"

"ये किसी अख़बार में काम करते हैं?" कैप्टन रशीद ने पूछा।

"अभी तो ये बर्मा से भागकर आये हैं। यहाँ एक फ़र्म केनवेसर हैं, लेकिन वहाँ 'बर्मा-समाचार' नाम से एक अख़बार निकाला करते थे।"

"लेकिन ट्रान्सलेशन···"

"इन्होंने दो अँग्रेज़ी किताबों का हिंदी में तरजुमा किया है। कर्नल हर्डन

ने अंग्रेजी में 'पोल्ट्री फार्म' के नाम से जो किताब लिखी है, उसका उल्था उन्होंने हिन्दी में किया है। आजकल हमारी फोजो के सामने अण्डे जुटाने का सवाल बुरी तरह पेश है। यूनिटो को अपने निजी मुर्गीखाने खोलने के लिए कहा जा रहा है। आप कर्नल हुडंन की किताब को अंग्रेजी में किस्तो में छापिए। उर्दू और हिन्दी में भार्गव साहब आपको मसाला तैयार कर देंगे।"

और जैसे एक बडे बोझ को सिर से उतारकर मेजर सलीम कुरसी पर पीछे को झुक गए और सिगार सुलगाने लगे। एक लम्बा कश खीचकर उन्होने इतना और कहा, "यह किताब हमारे जवानों के बडे काम की है, उनमे से ज्यादातर किसान हैं और उनको लडाई के बाद मुर्गियाँ पालने का कारोबार करना पडेगा।"

कैप्टन रशीद चुप रह गए। उन्होने एक प्रसिद्ध हिन्दी-दैनिक के स्टाफ से एक अनुभवी पत्रकार को लेने की सोच रखी थी। उनके लिए वहाँ बैठना कठिन हो गया। वे स्वय सिगरेट पीने के आदी न थे, किन्तु उन्होने अफसरों और दूसरे विजिटरो की आवभगत के लिए केवेण्डर का एक डिब्बा रख छोडा था। कभी-कभार स्वय भी उनके साथ सुलगा लेते थे। उस समय उन्हें कुछ ऐसी घबराहट हुई कि उन्होंने उठकर डिब्बे में से एक सिगरेट निकाला और उसे सुलगा लिया।

कुछ ही कश खीचने से उनका मुँह कडवा हो गया, मेजर सलीम की आँख बचाकर उन्होने सिगरेट खिडकी से बाहर फेक दिया। उनका जी हो रहा था कि दोनो हाथ पतलून की जेब मे डालकर कमरे में तेज-तेज चक्कर लगाएँ, लेकिन मेजर की उपस्थिति में उन्हें ऐसा करना ठीक न लगा। वे फिर आकर कुरसी पर बैठ गए और कुछ सकोच के साथ बोले.

"आपका खयाल है, ये साहब अखबार में फ़िट कर जाएँगे जर्नलिज्म का मामूली तजरबा तो हमारे ट्रान्सलेटरो को भी है। हम तो काबिल जर्नलिस्ट चाहते हैं।"

मेजर सलीम ने जैसे उनकी बात नही सुनी। सिगार के एक-दो कश

सोचकर उन्होंने कहा :

"कर्नल चोपड़ा आपकी सिफ़ारिश कर रहे थे।"

"कैसी ?"

"वे कहते थे कि आपको मेजर की रैंक मिलनी चाहिए, क्योंकि आपसे पहले इस अखबार के जितने एडीटर रहे हैं, सभी मेजर थे।"

कैप्टन रशीद भी आगे के सम्बन्ध में कुछ और पूछने जा रहे थे कि चुप हो गये और यह समाचार सुनाकर मेजर सलीम उठे और और फिर जैसे उन्हें सहसा कोई बात याद आ गई हो, उन्होंने कहा, "आज तो मीटिंग है।"

"मीटिंग ?"

"ब्रिगेडियर कल फ्रण्ट से लौटे हैं, उसी सिलसिले में वे कुछ ज़रूरी बातें करना चाहते हैं। चलिए मेरे साथ ही चलिए।"

"लेकिन इन्टरव्यू···?"

"क्या वक्त दिया है इन्टरव्यू का आपने ?"

"ग्यारह से चार तक।"

"तब तक तो आप बीस बार लौट आएँगे।"

विवश होकर कैप्टन रशीद असिस्टेण्ट ऐडीटर लेफ्टिनेण्ट अलीगुल ख़ाँ के कमरे में गये, "मुझे ज़रूरी तौर पर मीटिंग में जाना पड़ रहा है। इण्टरव्यू के लिए जो साहब आयें, उन्हें बिठाइए, उनसे बातचीत कीजिए। मैं जल्दी आने की कोशिश करूँगा।"

यह कहकर वे कार में मेजर साहब की बग़ल में जा बैठे।

शाम के साढ़े पाँच बजे उनकी कार हैड-ऑफ़िस से वापस आई तो उनके साथ एक सिख सूबेदार साहब भी उतरे।

फ्रण्ट से आने के बाद ब्रिगेडियर साहब जो ज़रूरी बात उनको बताना चाहते थे, वह थी कि पत्र में बहुत से टेकनिकल शब्दों का प्रयोग ग़लत होता है। उनका अनुवाद भी ग़लत होता है। बर्मा के मोर्चे पर जिस शब्द के लिए अनुवादक 'खन्दक' का

प्रयोग करते हैं, उनके स्थान पर 'मन की चोरी' होना चाहिए, क्योंकि वहां मन्दर नाम की कोई चीज नहीं। 'फ्रॉकिंग होम' की जगह एक स्थान पर 'मूपदी की गुफा' अनुवाद हुआ है, हालांकि यह मैनिकों ही की गुफा होती है। ऐसी कीमियों मिसाने अखबारों में थी। ब्रिगेडियर साहब ऐसे ग़लत अनुवाद पर बहुत लाल-पीले हुए और उन्होंने कहा कि अखबार के स्टाफ़ में कोई ऐसा फ़ौजी अफ़सर अवश्य होना चाहिए, जिसे फ़ंट का पूरा अनुभव हो। ब्रिगेडियर साहब की इस बात का सब अफ़सरों ने समर्थन किया और कहा कि वे तो स्वयं यही बात कहना चाहते थे और कर्नल चोपड़ा ने तो यह प्रस्ताव भी किया कि नई स्कीम के अधीन एक फ़ौजी अफ़सर अखबार में ले लिया जाए।

मीटिंग के बाद जब ब्रिगेडियर साहब ने कैप्टन रशीद को अपने कमरे में बुलाया तो उन्होंने उनका परिचय एक सिख सूबेदार साहब से कराया, "अख़बार के स्टाफ़ में एक फ़ौजी अफ़सर का होना ज़रूरी है।" उन्होंने कहा, "सूबेदार पुराने अफ़सर हैं, जंगी शब्दों से पूरी तरह परिचित हैं, इन्हें पंजाबी ऐडीशन का चार्ज दीजिए।"

और उन्होंने सूबेदार साहब को कैप्टन रशीद के साथ जाने की आज्ञा दी। एक फ़ौजी सलाम ठोककर सूबेदार साहब कैप्टन रशीद के साथ हो लिए।

"बादशाहो, मैनूँ तां जर्नलिज़म-वर्नलिज़म दा कोई तजरबा नईं," कार में सूबेदार साहब कैप्टन रशीद की बगल में बैठे बता रहे थे, "मैं ब्रिगेडियर साब नाल बहुत पहले कम्म करदा रिहा हां, ते ओह मेरे ते बड़े मेहरबान ने। मैं उन्हां नूँ किहा सी कि साब मैनूँ कोई होर नौकरी दे दे। मैं कदी अख़बारां दी शक्ल तक नईं डिट्ठी, कम्म करना तां दूर रिया, लेकिन ब्रिगेडियर साब ने किहा, 'वैल सूबेदार, तुम कोशिश करो, कोई मुश्किल नेईं। मैं ऐडीटर नूँ आख दियांगा कि ओह तैनूँ सिखा देवे। मैं चाहुँदा कि मिलट्री दा इक आदमी अख़बार विच्च

ज़रूर होवे, जिस नूँ बाक़ायदा लड़ाई दा तजरबा होवे।"[1]

"आप किस फ़्रन्ट पर हो आए हैं?" कैप्टन रशीद ने पूछा।

और भोले-भाले सूबेदार साहब ने बताया:

"बादशाहो, कुत्ते दी मौत मरना होंदा ते एथे आवन दी की लोड़ सी? मैं बदकिस्मती नाल इंजीनियर कोर विच भरती हो गया सी, ते तजरबा मैनूँ कक्ख ना होया सी। साडी कोर कुछ दिनां तक बर्मा फ़्रन्ट जान वाली ए। मैं साब नूँ आखिया, 'जे मेहरबानी करनी ए ते हुन कर। निक्के मेरे बाल बच्चे ने ते उन्हां नूँ वेखन वाला कोई नईं। जे असीं फ़्रन्ट नूँ टुर गये ते फ़ेर तेरी मेहरबानी किस दिन कम्म आऊ!' साब मेरे ते खुश ए। मेरी हालत ते ओहनूँ तरस आ गिया ते ओस मैनूँ एथे घल्ल दित्ता। मैं कम्म सिक्खन दी पूरी कोशिश करांगा। जे मैं एथे कामयाब हो गया ते साब ने मेरे नाल वादा कीता है कि मेरे लई तग़मे दी सिफ़ारिश करेगा।"[2]

---

१. बादशाहो, मुझे जर्नलिज़्म आदि का कोई अनुभव नहीं। मैं बहुत पहले ब्रिगेडियर साहब के साथ काम करता रहा हूँ और वे मुझ पर बड़े कृपालु हैं। मैंने उनसे कहा था कि साहब मुझे कोई दूसरी नौकरी दे दो। मैंने कभी अख़बार की शक्ल तक नहीं देखी, उसमें काम करना तो दूर रहा। लेकिन ब्रिगेडियर साहब ने कहा, वेल सूबेदार, तुम कोशिश करो, कोई मुश्किल नहीं। मैं एडीटर से कह दूँगा कि वह तुम्हें सिखा दे। मैं चाहता हूँ कि फ़ौज का एक आदमी अख़बार में ज़रूर हो जिसको लड़ाई का बाक़ायदा तजरबा हो।

२. बादशाहो, यदि (फ्रण्ट पर) कुत्ते की मौत मरना होता, तो यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? मैं दुर्भाग्यवश इंजीनियर-कोर में भरती हो गया था। और अनुभव मुझे कुछ भी न हुआ था। हमारी कोर कुछ ही दिनों में बर्मा फ्रण्ट पर जाने वाली है। मैंने साहब से कहा कि यदि कृपा करनी हो तो अब कर। मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं और मेरे सिवा उन्हें देखने वाला कोई नहीं। यदि हम फ्रण्ट को ही चले गए तो तुम्हारी कृपा किस दिन काम आएगी! साहब मुझ पर प्रसन्न है। मेरी स्थिति पर उसे तरस आया और उसने मुझे आपके साथ भेज दिया। मैं काम सीखने की पूरी कोशिश करूँगा, यदि मैं यहाँ सफल हो ही गया तो साहब ने वचन दिया है कि वह मेरे लिए तमगे (पदक) की सिफारिश करेगा।

दफ्तर में आकर मेज पर बैठते ही कैप्टन रशीद ने घण्टी पर हाथ मारा। "पण्डित किरपाराम को सलाम दो !" उन्होंने चपरासी को आज्ञा दी।

लेकिन पण्डितजी स्वयं साहब को सलाम देने और हैड-ऑफिस का हाल चाल पूछने आ रहे थे। मुस्कराते हुए उन्होंने साहब का हुक्म पूछा।

पिछले तीन महीने में पहली बार कैप्टन रशीद ने पण्डितजी की मुस्कान का उत्तर दिया। कुछ हकलाते हुए उन्होंने कहा, "सूबेदार साहब ब्रिगेडियर के आदमी है। ये गुरुमुखी के सब-ऐडीटर होंगे। ब्रिगेडियर साहब चाहते है कि अखबार के स्टाफ़ में एक फौजी अफसर होना चाहिए। (यहाँ उन्होंने वे सब युक्तियाँ दोहराईं जो ब्रिगेडियर ने मीटिंग में दी थी) इसलिए गुरुमुखी के ट्रान्सलेटरों से कह दें कि वे इनकी मदद करें और कोई तकलीफ न दे।"

"अजी आप चिन्ता न करें, सब ठीक हो जाएगा।" पण्डितजी ने आत्म-विश्वास से हँसते हुए कहा, "जब तक मै हूँ, किसी अफसर को कोई कष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह आप चाहते है, वैसा ही होगा।"

और जब वे सूबेदार साहब को साथ लिये हुए कैप्टन रशीद के कमरे से बाहर निकले तो उनके ओठों पर मुस्कराहट और भी फैल गई।

उनके बाहर जाते ही कैप्टन रशीद ने फिर घण्टी पर हाथ मारा।

"लेफ्टिनेण्ट अली को सलाम दो।"

लेफ्टिनेण्ट के आने पर उन्होंने पूछा, "मेरा पैगाम मिल गया था ?"

"जी !"

"इण्टरव्यू ले लिया ?"

"हिन्दी और गुरुमुखी के उम्मीदवारों का इण्टरव्यू हो गया है। बाकी को आपके टेलीफ़ोन के मुताबिक कल आने के लिए कह दिया है।"

"आप उन्हें भी निपटा लें। उम्मीदवारों का चुनाव तो लगभग हो गया है।"

"अंग्रेजी के लिए कौन आ रहा है?"

"डायरेक्टर-जनरल का कोई आदमी है। ब्रिगेडियर कह रहे थे, डायरेक्टर अंग्रेजी का असिस्टेण्ट बहुत लायक़ चाहते हैं, क्योंकि उसी से बाक़ी सब सेक्शनों का पेट भरता है। शायद कोई आदमी हेड-ऑफ़िस से आये।"

"और उर्दू?"

"उसके लिए भी चुनाव हो गया समझिए।"

यह कहकर उन्होंने फ़ाइल उठाई और काम में लग गए।

लेफ़्टिनेण्ट अलीमुल खाँ अपने कमरे में चले गए।

कैप्टन रशीद ने फ़ाइल अपने सामने रख तो ली, लेकिन हस्ताक्षर वे एक काग़ज़ पर भी न कर सके। फ़ाइल को एक ओर हटाकर और ट्यूनिक के कॉलरों को दोनों हाथों से पकड़े वे कमरे में घूमने लगे।

सात बज चुके थे। चपरासी ने झिझकते हुए भीतर कमरे में झाँककर देखा, कैप्टन रशीद उसी तरह ट्यूनिक के कॉलरों को थामे सिर झुकाए कमरे में चक्कर लगा रहे थे।

दूसरी सुबह जब पण्डित किरपाराम साहब को सलाम देने पहुँचे तो उन्होंने कैप्टन रशीद के बराबर की कुरसी पर एक नवयुवक को बैठे देखा, "यह हैं मिस्टर हनीफ़, बी० ए० आनर्स," उसका परिचय देते हुए उन्होंने पण्डितजी से कहा, "ये उर्दू-सेक्शन का काम सँभालेंगे।"

पण्डितजी ने खीसें निपोरते हुए मिस्टर हनीफ़ को सलाम किया, और उन्हें साथ ले चले।

चलते समय कैप्टन रशीद के ये शब्द उनके कान में पड़े:

"ज़रा ट्रान्सलेटरों से कह दीजिएगा, इन्हें काम सीखने में मदद दें।"

उबाल

जब दूध उबल-उबलकर अँगीठी पर गिरने लगा और 'छों-छों' की आवाज के साथ एक तीखी-सी गन्ध उठी तो चन्दन ने हड़बड़ाकर पतीली की ओर हाथ बढ़ाया। अँगीठी के ताप से पतीली लाल-सुर्ख हो गयी थी। बेबसी की एक दृष्टि चन्दन ने इधर-उधर डाली—कोई कपड़ा पास न था। उसने चाहा, पानी का छींटा ही दे दे, किन्तु लोटे के पानी में अभी-अभी उसने अपने जूठे हाथ धोए थे। दूध उबल रहा था और [illegible] चन्दन जानते थे उसके मालिक और मालकिन धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं—विवशता के उस क्षण में चन्दन के बढ़े हुए हाथ और बढ़ गए और निमिष-मात्र में जलती-जलती पतीली [illegible] से फर्श पर आ गई। चन्दन की उँगलियों की पोरें जल गईं। उबलता हुआ दूध उसके हाथों पर गिर गया और जलन के कारण उसके आँखों में अनायास एक 'सी' निकल गई।

पतीली को फर्श पर रखते हुए थोड़ा-सा दूध फर्श पर भी गिर गया था। [illegible]

[illegible]

बात यह हुई थी कि दूध को अँगीठी पर रखकर वह उसके मालिक और मालकिन की बातें सुनने लगा था। यद्यपि दिन काफ़ी चढ़ आया था और चन्दन ने दफ्तर के जाने के लिए खाना भी तैयार कर लिया था, लेकिन वे अभी तक बिस्तर ही पर लेटे बातों में निमग्न थे और कुछ ही देर पहले उसके मालिक ने चन्दन को चाय बनाने का आदेश दिया था।

उसने दूध की पतीली को अँगीठी पर रख दिया था और वह उनकी बातें सुनने में निमग्न हो गया था। जब से उसके मालिक की शादी हुई थी, वह प्रायः उनकी बातों में मग्न हो जाता था। उसके पहले वह प्रायः रोज़ ही भी जागता, पर अपनी उस नव-परिणीता पत्नी के आने पर वह उसके साथ दिन चढ़े तक सोया रहता। जब जागता तो वहीं लेटे-लेटे चन्दन को चाय बनाने का आदेश दे देता। और फिर वे दोनों, पति-पत्नी धीरे-धीरे बातें किया करते—मीठी, मद-भरी बातें।

चन्दन को इन बातों में रस आने लगा था। वे अन्दर बिस्तर पर लेटे धीरे-धीरे बातें करते रहते और वह बाहर बैठा उन्हें सुनने का प्रयास किया करता।

आग की तेज़ी के कारण दूध पतीली में उबल आता हुआ पर उठ रहा था और चन्दन उस ओर से बेखबर उनकी बातें सुनने में निमग्न था।

"मैं विवश हो जाता हूँ, तुम्हारे गाल ही ऐसे हैं…"

"आपके हाथों का अपराध नहीं क्या…"

"इतने अच्छे हैं तुम्हारे गाल कि…"

"जलने लगे आपकी चपतों से…"

"लो मैं इन्हें ठण्डा कर देता हूँ।"

और चन्दन को ऐसे लगा जैसे कोई सुकोमल फूल रेशम के नरम-नरम फ़र्श पर जा पड़ा हो। कल्पना-ही-कल्पना में उसने देखा कि उसक मालिक ने अपने ओंठ अपनी पत्नी के गाल से लगा दिए हैं। वहीं बैठे-बैठे उसका शरीर गरम होने लगा, उसके अंग तन गए और कल्पना-

ही-कल्पना में अपने मालिक का स्थान उसने स्वयं ले लिया।

हाथ धोकर उसने सिर को फिर झटका दिया और ओठों के बाएँ कोने से मुस्कराता हुआ वह अन्दर गोदाम में गया। उसने जरा-सा सरसों का तेल लेकर अपने हाथों की काली, मैली, जलती हुई त्वचा पर उस जगह लगाया, जहाँ जलन हो रही थी। फिर आकर वह रसोई-घर में बैठ गया और उसने चाय की केतली अँगीठी पर रख दी।

किन्तु हाथ जलाने और अपनी इस मूर्खता पर दो बार सिर हिलाकर मुस्कराने पर भी उसके कान फिर कमरे की ओर जा लगे, उसकी कल्पना अपनी समस्त तन्मयता के साथ उसके श्रवणों की सहायता करने लगी और उसकी आँखों के सम्मुख फिर कई चित्र बनने और मिटने लगे।

"चन्दन !" उसके मालिक ने चीखकर आवाज़ दी और फिर कहा, "कहीं मर गए क्या ?"

मालिक की आवाज सुनकर वह चौंका। जल्द-जल्द चाय और तोस बनाकर अन्दर ले गया।

उसके मालिक-मालकिन पूर्ववत् बिस्तर पर पड़े थे। वे दोनों आलिंगनबद्ध तो न थे, फिर भी दोनों एक-दूसरे से सटे, तकिये के सहारे लेटे हुए थे। लिहाफ़ दोनों के सीने तक था और मालिक की बाँह अभी तक मालकिन की गरदन के नीचे थी।

"इधर रख दो।"

चन्दन ने ट्रे तिपाई पर रख दी।

एक बार देखकर मालिक ने कहा, "तुम्हें हो क्या गया है ? दूध का जग कहाँ है ?"

"जी, अभी लाया।" और सिर को एक बार झटका देकर ओठों के बाएँ कोने से मुस्कराता हुआ वह रसोईघर की ओर गया।

दूसरे क्षण उसने दूध का बरतन लाकर रख दिया, पर उसे फिर गालियाँ सुननी पड़ीं, क्योंकि दोबारा देखने पर मालिक को मालूम हुआ कि छलनी नहीं है।

चन्दन ने केतली लाकर रख दी और क्षण-भर के लिए वहीं खड़ा रहा। उसकी झुकी हुई दृष्टि अपनी मालकिन के चेहरे पर जा पड़ी—सुन्दर, गुलाबिन, रूखे केशों की लटें उसके गोरे-गलगोथने चेहरे पर बिखरी हुई थीं, ओंठ सूखे होने के बावजूद गीले-गीले थे, मुस्कराती आँखों में तन्द्रा की बारीक-सी रेखा थी और चेहरे पर हल्की-सी थकन की छाया। उसके मालिक ने बड़े प्यार से कहा, "चाय बना दो न, जान!"

पर 'जान' ने रूठते हुए करवट बदल ली।

"मैं कहता हूँ, चाय न पियोगी?" उसे मनाते हुए मालिक ने कहा।

"मुझे नहीं पीनी चाय," मालकिन ने गाल को मसलते हुए उत्तर दिया, जिस पर अभी-अभी प्यार की हल्की-सी चपत उसके मालिक ने लगाई थी।

गर्दन के नीचे की बाँह उठी और मालकिन अपने मालिक के आलिंगन में भिंच गई।

"क्या करते हो, शरम नहीं आती?"

चन्दन का दिल धक्-धक् करने लगा और उसके मालिक का ठहाका कमरे में गूँज उठा।

"उठो, बना दो न चाय!" मालिक ने बड़ी नरमी से बाँह को ढीला छोड़ते हुए कहा, "तुम्हारे गाल ही ऐसे प्यारे हैं कि अनायास उन पर चपतें लगाने को जी चाहता है।"

तड़पकर मालकिन ने फिर करवट बदल ली।

"चन्दन, तुम बनाओ चाय।"

लगभग काँपते हुए हाथों से चन्दन ने चाय की प्याली बनाई। प्याली उठाकर अपनी 'जान' को बग़ल में भींचते हुए उसके मालिक ने प्याली उसके ओंठों से लगा दी।

यह 'जान' का शब्द था या उसके मालिक का उसके सामने अपनी पत्नी को आलिंगन में लेना कि जब दोपहर को काम-काज से निबटकर चन्दन अपनी कोठरी में जा लेटा तो उसकी आँखों में 'ज़ोहरा जान'

का चित्र घूम गया और उसने अनायास सरसों के तेल और मिट्टी में सने गिलाफ़हीन, मैले, जीर्ण-शीर्ण तकिये को अपने आलिंगन में भींच लिया।

अचानक उबलकर ऊपर आ जाने वाले दूध की भाँति न जाने जोहरा का यह चित्र किस तरह उसके बचपन की गहरी, दबी गुफाओं से निकलकर उसके सामने आ गया—वही नाटा-सा क़द, भरा-भरा गदराया शरीर, बड़ी-बड़ी चंचल आँखें, पान की लाली से रँगे ओठ, भारी कूल्हे, वही छातियों का उभार और वह स्वर्ण-स्मिति जिसके स्रोत का पता ही न चलता था कि आँखों में आरम्भ होती है या ओंठों पर।

वह उस समय बहुत छोटा था और अनाथ हो जाने के कारण मौसी के पास रहा करता था। उसकी यह मौसी एक सेठ के बच्चों की धाय थी। यह सेठ चावड़ी बाजार में ग्रामोफोन और दूसरे बाजों की दुकान करता था। इस दुकान के सामने जोहरा का चौबारा था और सेठ की दुकान के बाजे चाँदी के सिक्कों में परिणत होकर धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा करते थे।

चन्दन अपने मौसेरे भाई और सेठजी के बड़े लड़के के साथ कभी-कभी जोहरा के चौबारे पर चला जाता था।

जोहरा सेठजी के लड़के को प्यार किया करती, मिठाई आदि देती और इस मिठाई का कुछ जूठा हिस्सा उन दोनों भाइयों को भी मिल जाया करता था। कई बार वह दूसरे बच्चों के साथ चौबारे के बाहर आँगन में खेल रहा होता कि सेठजी आ जाते, जोहरा के पास जा बैठते, उसे आलिंगन में ले लेते या उसकी सुकोमल जाँघ पर सिर रखकर लेट जाते।

उसकी यह मालकिन भी तो जोहरा से मिलती-जुलती थी—उसी जैसा नाटा कद, उसी-जैसे भरे-गदराए कूल्हे, बादलों-सी उमड़ती हुई छातियाँ, गोल-गोल रस-भरे गाल, बड़ी-बड़ी मुस्कराती आँखें और लाल ओठ—कौन कह सकता है कि उस एक क्षण में उसे अपने

आँगन के आँगन में भी देखकर ही उसे ज़ोहरा का ध्यान न हो आता था।

अचानक ही कल्पना में चन्दन ज़ोहरा के चौबारे पर पहुँचकर बैठ गया। उसकी जाँघ पर सिर रखे लेट गया और ज़ोहरा प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरने लगी। वह भूल गया कि उसके टखनों तक मैल जमा हुआ है; सर्दी के कारण उसकी टाँगों की त्वचा घुटनों तक फटी-सी बन गई है; उसकी मैली नेकर (जो उसके मालिक ने उसे कभी दी थी) पीछे से फटी सी गई है; उसके स्याह माथे पर चोट का एक बदनुमा निशान-सा दाग़ है; उसका निचला ओंठ फटा हुआ है और उसके सिर के बाल छोटे-छोटे और रूखे हैं—वह मस्त लेटा रहा और ज़ोहरा उसके बालों पर हाथ फेरती रही। वहीं उसकी जाँघ पर लेटे-लेटे उसने करवट बदली और कहना चाहा—'ज़ोहरा, कितनी अच्छी हो तुम…!' पर उसकी कमर में कोई तीखी-सी चीज चुभ गई और तब उसने जाना कि वह नंगे फ़र्श पर लेटा हुआ है और वह चीज़, जिस पर उसका सिर रखा है, ज़ोहरा की जांघ नहीं, बल्कि वही सड़ा-गला, मैला तकिया है।

चन्दन ने सिर को झटका दिया, किन्तु वह मुस्कराया नहीं। उठकर, दीवार से पीठ लगाकर बैठ गया। वहीं बैठे-बैठे पिछले कई वर्ष उसकी आँखों के सामने उड़ते हुए-से गुज़र गए।

सेठजी तो अपनी सब ज़ायदाद चावड़ी बाज़ार के 'हुस्न' की भेंट करके अपने नाना के गाँव चले गए थे, जो कहीं मध्य-पंजाब में अपनी कुरूपता और अपढ़ता की गोद में सोया पड़ा था। चन्दन की मौसी रियासत अलवर में अपने गाँव चली गई और चन्दन इस अल्प-वयस ही में तीन रुपये मासिक पर उन सेठ के एक मित्र के यहाँ नौकर हो गया था…

इसके बाद उसका जीवन उस कम्बल की भाँति था जिसे इधर से रफ़ू किया जाए तो उधर से फट जाए, उधर से सिया जाए तो इधर से उधड़ जाए।

इससे इस मालिक के यहाँ पहुँचकर उसने सुख की साँस ली थी और उसने यह महसूस किया था कि ऐसा हँसमुख, उदार और सुखी स्वभाव का मालिक उसे इन बारह वर्षों की नौकरी में नहीं मिला। किन्तु उसके मालिक का वही सुशासन उसके लिए मुसीबत बन गया। उसका मालिक उसके सामने ही अपनी पत्नी से प्यार करने लगता, उसे आलिंगन में ले लेता और प्राय चूम लेता ; जैसे चन्दन हाड़-मांस का इन्सान न हो, मिट्टी का लोंदा हो !

चन्दन ने सोचा—इस विवाह से पहले वह कितने सुख-शान्ति से रहता था ! वर्षों में वह गरमी-सरदी-सी, वर्षा में वह उमस-उकताहट-सा, वह अशान्ति और अनिद्रा-सी उसे पहले कभी महसूस न हुई थी। वह सोता था तो तन-बदन का होश उसे न रहता, किन्तु जब से उसके इस मालिक ने विवाह किया और उसकी नई मालकिन आयी, उसकी नींद उड़-सी गई थी। उसे विचित्र प्रकार के सपने आते थे। आज उसने कामनी को देखा था। कामनी उसके पहले मालिक की लड़की थी। बच्ची मालकिनियों-सी उसकी हालत थी, टखनों से ऊँचा लहँगा और कुर्ती पहने वह सारे घर घूमा करती थी। वही लड़की स्वप्न में उसके साथ आ लेटी थी। कैसे, कहाँ, उसे कुछ याद नहीं। पर वह जाग उठा था। उसका शरीर गरम था, उसकी नसें तनी हुई थीं और उसे पसीना आ गया था। फिर वह सो न सका।

कुछ भी समझ में न आने से अपनी मूर्खता पर उसने सिर हिलाया, पर वह मुस्कराया नहीं। उसका मालिक दफ्तर गया हुआ था। मालकिन अन्दर कमरे में गहरी नींद सोई हुई थी। वह उठा और पड़ोसी राय साहब के नौकर भैरू की कोठरी की ओर चल पड़ा, जहाँ दोपहर के समय इर्द-गिर्द के सब नौकरों की महफिल जमती थी।

चैत सुदी पूर्णमासी का चाँद गुलमुहर के पीछे से धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था। कोठी की फ़सील में लगी नव-पत्र की पच्चीकारी के पत्ते तरल रजत के परस से चमक उठे थे। चन्दन धीरे-धीरे अपनी कोठरी

ग दिखा—सामने कोठी के पोर्च पर फैली हुई बिगिन-वेलिया के लाल गुलनारी फूल चाँदनी में हल्के स्याही मायल दिखाई दे रहे थे। एक ओर केलेण्डर का पुराना पेड़ (जिसका तना पारसाल मध्य से काट दिया गया था) अपनी ऊबड़-खाबड़ शाखाओं के सिरों पर पत्तों और फूलों के गुच्छे लिए चाँदनी में झूम रहा था। दूर से वे गुच्छे नन्हें-नन्हें बादलों की टुकड़ियाँ दिखाई देते थे। कचनार और नाहू के फूलों की मादक सुगन्ध वातावरण के कण-कण में बस गई थी। यद्यपि अभी तक वे सब अन्दर कमरे में सोते थे, पर नव-ऋतु के आगमन से सरदी अधिक न रही थी। चन्दन अनमना-सा गोंदनी के एक छोटे-से पेड़ के पास जा खड़ा हुआ। अपने ध्यान में खड़े-खड़े उसने दो-चार नन्हीं-नन्हीं गोंदनियाँ तोड़कर मुँह में डाल लीं। पूरी तरह पकी न थीं; उसके मुँह का स्वाद बिगड़ गया। क्षण-भर तक वह असमंजस की दशा में वहीं खड़ा रहा। फिर वह बरामदे में गया और उसने बड़ी सावधानी से बैठक का दरवाज़ा खोला।

सोने का कमरा बैठक के साथ ही था और बैठक साधारणतः खुली रहती थी। उसका एक दरवाज़ा वह स्वयं बाहर से बन्द कर लिया करता था और दूसरा मालिक अन्दर से बन्द कर लेते थे। उसने धीरे से दरवाज़ा खोला। मालिक के सोने के कमरे में हल्की रोशनी थी, उसका प्रतिबिम्ब दरवाज़े के शीशों पर पड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी ने गँदले प्रकाश की कूची दरवाज़े के शीशों पर फेर दी हो। धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चन्दन बढ़ा और जाकर दरवाज़े के साथ पञ्जों के बल खड़ा हो गया।

अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था, उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह वापस मुड़ा। उसका शरीर गरम होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था, कण्ठ और ओंठ सूखने लगे थे और उसकी नसों में जैसे दूध उबलने लगा था।

उसी तरह पञ्जों के बल भागता-सा वह बाहर [illegible] रे से उसने

दरवाज़ा लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने जैकारेण्डे का तना खड़ा था। उसके जी में आया कि अपने मुक्का यश की एक ही चोट से उस तने को गिरा दे।

कोठी के सामने लॉन में फुहारे के गिर्द लाल-पीले फूलों के अगनित पौधे लहरा रहे थे, जिनके चौड़े-चौड़े पत्तों पर पानी की बूँदें झिलमिल-झिलमिल पड़ती थी। ककरौंदे की सुगन्ध और भी तीखी होकर वायुमण्डल में बस गई थी। चन्दन ने जाकर फुहारे की टोंटी घुमा दी फर्र-फर्र मीठी फुहार उस पर पड़ने लगी।

वह जेठू के यहाँ क्यों गया? वह सोचने लगा। दोपहर के समय इर्द-गिर्द की कोठियों के नौकर जेठू की कोठरी में इकट्ठे होते थे। कभी ताश खेलते, कभी चौसर की बाजी लगाते, कभी अपने-अपने मालिकों और मालकिनों की नकलें उतारते। कभी जेठू अपने चचा से तवे वाला बाजा माँग लाता, जो उसने एक कबाड़ी की क्लीयरिंग सेल (clearing sale) में खरीदा था। उसकी आवाज़ ऐसी थी जैसे अतिसार का रोगी बच्चा रिरिया रहा हो। किन्तु इस पर भी सब बड़े मज़े से उस पर 'गोरी तेरे गोरे गाल पै' या 'तोसे लागी नज़रिया रे' सुना करते। हाल ही में जेठू चारली का एक नया रिकार्ड ले आया था और दोपहर-भर उसकी कोठरी में—

'तेरी नज़र ने मारा!

एक दो तीन चार पाँच छ सात आठ नौ दस ग्यारह बारह

तेरी नज़र ने मारा!'

होता रहता था—लेकिन चन्दन कभी उधर न गया था। उसके पास समय ही न था। प्रातः ही उसका मालिक उसे जगा दिया करता था। वह उसके मालिश करता, उसके नहाने का पानी तैयार करता, चाय बनाता, उसके दफ्तर चले जाने के बाद खाना तैयार करता, दफ्तर ले जाता, आकर नहाता, खाता और सो जाता—ऐसी गहरी नींद कि प्रायः दिन छिपे तक सोता रहता और कई बार उसके मालिक को दफ्तर से आकर उसे ठोकर मारकर जगाना पड़ता।

किन्तु आज पानी घनिष्ठा से हारकर जब वह दोपहर को जेठू की कोठरी में गया तो उसने ऐसी बातें सुनीं कि उसकी रही-सही नींद भी हराम हो गई।

फुहार के ठंडे पवन से उसके शरीर में झुरझुरी-सी उठी। वह डरा, कहीं उसे ज्वर तो नहीं हो गया? ऋतु बदल रही है और वह पानी में भीगते सदा भीग रहा है। यदि उसे निमोनिया हो गया तो! उसने सिर को एक बार झटका दिया, पर वह मुस्कराया नहीं और फुहार को भुला ही छोड़कर, अपनी कोठरी में जाकर लेट गया।

लेटते ही उसकी आँख लग गई। उसका सिर भारी था। तन जल-सा रहा था और आँखें कुछ जल्दी उबली-उबली-सी हो रही थीं—उसने फिर एक स्वप्न देखा था—कच्ची नाशपातियों के गुच्छे उसके इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। वह एक सूने वीरान मकान में खड़ा उन्हें पकड़ने का प्रयास कर रहा है, पास ही पानी का एक नल चल रहा है और उसके पास एक बच्चा खड़ा चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है—'मेरे खिलौने मत तोड़ो,' 'मेरे खिलौने मत तोड़ो।' वह सिर उठाकर देखता है। वह बच्चा कामनी बन जाती है और चन्दन सुनता है उसका आर्त स्वर—'मेरी नाशपातियाँ मत तोड़ो, मेरी नाशपातियाँ...'

चन्दन उन्मादी की भाँति उठा। जेठू की बातें उसके कानों में गूँज गईं। उसने कुरता पहना। एक पुराने मैले मिट्टी के बरतन में से पुराना-सा बटुआ निकालकर जेब में रखा, कोठरी की कुण्डी लगाई और धीरे-धीरे कोठी से बाहर निकल गया।

चाँदनी एक रजत-वितान की भाँति परेड-ग्राउंड पर फैली हुई थी और सड़कों के नीम जैसे इस वितान को थामे खड़े थे। उनके पत्तों से बिजली के बल्ब टिमटिमा उठते थे और दूर से देखने पर ऐसा मालूम होता था, जैसे उनके परे कोई धीमा-सा अलाव जल रहा है।

चन्दन 'क्वीन मेरी रोड' पर हो लिया। दाईं ओर की कोठी से ककरौंदे, खट्टे और मौलश्री की मिली-जुली सुगन्ध का एक झोंका आया और सड़क पर पेड़ों के नीचे बिछे प्रकाश और [illegible] जाल

हिल उठे।

तीस हजारी के चौरस्ते पर वह रुका कि शायद कोई ट्राम पानी हुई मिल जाए, किन्तु शायद ग्यारह कभी के बज चुके थे, सड़क बिलकुल सुनसान थी। एक गन्दगी की गाड़ी दुर्गन्ध फैलाती हुई उसके पास से गुजर गई। चन्दन का दिमाग़ भन्ना गया। भागकर वह मिठाई के पुल पर हो लिया। जिस चबूतरे पर सिपाही खड़ा रहता था, वह टूटा हुआ था। शायद किसी मोटर ड्राइवर ने सिपाही की कर्कशता का बदला उस निरीह चबूतरे से लिया था। पुल पर बिलकुल सन्नाटा था। ऊपर चाँद चमक रहा था और पुल के नीचे अँधेरे और गहराई में रेल की लाइनें और सामने कुछ दूर लाल-हरे सिगनल चुपचाप टिमटिमा रहे थे। चन्दन पुल की दीवार के साथ सिर लगाए क्षण-भर तक चुपचाप विमुग्ध-सा इन नागिनो-सी लाइनों और टिमटिमाते हुए सिगनलों को देखता रहा। फिर वह आगे चल पड़ा।

सड़क बिलकुल सुनसान थी, दोनों ओर की दुकानें बन्द थीं और फुटपाथ पर मैले-कुचैले गन्दे लिहाफ़ लिये कहीं-कहीं दुकानदार सोये हुए थे—मैल से सनी काली धोतियों में उनके गौर अंग पूर्णमासी के चाँद की जगमगाती ज्योत्स्ना में और भी चमक रहे थे। तेलीवाड़ा के सामने सड़क के बाईं ओर फुटपाथ पर एक टूटा हुआ ताँगा पड़ा था और दो-तीन बूढ़े की खाली गाड़ियाँ खड़ी थीं। इसके बाद दूर तक सफ़ेद-सी दीवार चली गई थी जिसके पीछे कभी किसी रेलगाड़ी के तेज़-तेज़ गुज़रने की आवाज़ आ जाती थी। दाईं ओर दुकानों के बाहर कहीं बाँसों के गट्ठे पड़े थे, कहीं चारपाइयाँ और कहीं लकड़ी की खाली पेटियाँ। चन्दन चुपचाप अपने ध्यान में मग्न कुतुब रोड के चौरस्ते पर आ गया।

सदर बाज़ार बिलकुल बन्द हो गया था। केवल कोने के हलवाई की दुकान खुली थी। चन्दन की भड़की हुई तबीयत यहाँ तक आते-आते लगभग शान्त हो गई थी। उसके मन में केवल एक उत्सुकता की भावना शेष थी और इसी के अधीन उसने हलवाई की दुकान से

"चम्पी करायोगे ?"

चन्दन ने अनजाने ही में 'हाँ' कर दी। पास ही एक और वैसी ही दुकान सजी थी और उसके परे एक लम्बे बरामदे में अपनी-अपनी कोठरी के सामने रूप (यद्यपि रूप उनमें से एक के पास भी था, यह कहना मुश्किल है) तथा सतीत्व का व्यापार करने वाली कई वारांगनाएँ खड़ी अपने-अपने ग्राहकों को बुला रही थीं। खड़े-खड़े थक जाने के डर से या अपने वक्ष का उभार दिखाने के लिए उन्होंने छत से रस्सियाँ लटका रखी थीं, जिनके सहारे वे खड़ी हो जाती थीं।

चन्दन के सिर में तेल गिरने से एक लिजलिजी-सी सरसराहट हुई और हज्जाम लड़का चम्पी करने लगा। चम्पी करने के बाद चन्दन के मस्तक और गरदन को उसने एक अत्यन्त गन्दे तौलिये से पोंछकर बाल बना दिए।

चन्दन जब वहाँ से उठा तो उसे नाक में सस्ते खुशबूदार तेल की तीखी गन्ध आ रही थी और उसकी उमंग फिर जैसे जग उठी थी। चौक छोड़कर वह एक गली में हो गया। यहाँ लोग कम थे और रोशनी भी इतनी तेज़ न थी। वह एक बार गली के दूसरे सिरे तक जाकर मुड़ आया। उसे समझ न आती थी कि वह कैसे बातचीत शुरू करे। वह तो उनसे आँखें भी न मिला पाता था। ध्यान-मात्र ही से उसका दिल धक्-धक् करने लग जाता था। उसने सोचा, वापस चला जाए। उसे जेठू के साथ आना चाहिए था और उसके मन में आया कि गली को पार करके वह दूसरे रास्ते से निकल जाए। किन्तु इतनी दूर आकर वह जाना भी न चाहता था। उसी समय एक कोठरी के आगे कुछ अँधेरे में बैठी हुई एक मोटी थलथल-पिलपिल स्त्री ने उसकी मुश्किल आसान कर दी। उसके पास दो छोटी-छोटी लड़कियाँ फ़र्श पर ही दरी बिछाये लेटी हुई थीं—बिलकुल कासनी ही की वयस की। "आओ-आओ, इधर आओ!" प्यार से उसने कहा।

चन्दन बढ़ा।

बड़े धीमे भेद-भरे स्वर में उसने कहा, "आओ, सोचते क्या हो ?

सामने वाले

इशारा उसी कोठरी के बाहर बैठी हुई स्त्री की ओर था, जो केवल एक काली बनियान और काली साड़ी पहने लोहे की कुर्सी पर बैठी थी, जिसकी बाहों में मांस लटक दिखाई देते थे और जिसकी छातियां ढली हुई मशकों की भांति लटक रही थीं।

चन्दन ने उसके पास धरती पर चटाई बिछी और आधी बैठी लड़की की ओर आकांक्षा-भरी दृष्टि से देखा। उसकी नाक में छोटी-सी नय भी थी और उसने बेरू से सुना था कि उन लोगों में यह नय कौमार्य का चिह्न होती है।

मुस्कराकर मोटी स्त्री ने कहा, "यह तो अभी बहुत छोटी है, यह अभी यह सब क्या जाने !"

चन्दन की आँखों में नन्ही नागफनियाँ घूम गईं, फिर कासनी और फिर नन्ही नागफनियाँ।

और मोटी स्त्री ने कहा, "दो रुपये लगेंगे।"

चन्दन चुप रहा। वह कहना चाहता था, 'दो रुपये बहुत हैं।'

तभी मोटी स्त्री ने कहा, "अच्छा तो डेढ़ सही। अभी तो नय भी नहीं उतरी।"

चन्दन की नसों में खून उबलने लगा। उसका शरीर गरम होने लगा। दूसरे क्षण वह गन्दे-मैले परदे के अन्दर चला गया और उसके पीछे-पीछे लैम्प और उस लड़की को लिये हुए वह मोटी स्त्री !

एक सप्ताह बाद सिर पर अपना बोरिया-बिस्तर उठाए चन्दन पोर्च में खड़ा था और अन्दर कमरे में उसके मालिक अपनी पत्नी को आदेश दे रहे थे—मैं अभी डॉक्टर को भेजता हूँ। सब मकान को डिसइन्फ़ेक्ट (disinfect)करवा लेना, सब जगह तो जाता रहा है कमबख्त !

और चन्दन बेबसी की दशा में खड़ा सोच रहा था 'पर लड़की की आयु तो तेरह वर्ष की भी न होगी और उसकी तो अभी नय भी न उतरी थी।'

बच्चे

वर्षा उस समय ज़ोर से होने लगी थी और नन्हा तुलसीराव अपनी माँ की साड़ी का पल्लू पकड़े उसके साथ जाने का हठ कर रहा था, जबकि राशन अफसर श्री बालकृष्ण विट्ठलराव कोलार्कर अपने बँगले में दाखिल हुए।

"नको, नको, तिकडे बसा, तिकडे !"[1] श्रीमती कोलार्कर ने अपना पल्लू छुड़ाते हुए कहा।

परन्तु बच्चा निरन्तर "हम ममी साथ जायँगा !" "हम किचन में जायँगा !" चिल्लाता रहा।

श्रीमती कोलार्कर ने बच्चे का ध्यान बटाने के विचार से कहा, "देखो, तुम्हारे पापाजी आये हैं, गुड ईवनिंग बुलाओ।"

बच्चे ने ममी का पल्लू पकडे-पकडे वहीं से गुड ईवनिंग बुलाई।

किन्तु पापाजी ने इस अभिवादन का कोई उत्तर न दिया।

"पापाजी नहीं बोलता, पापाजी एकदम डर्टी है," बच्चे ने आया से सीखी हुई हिन्दुस्तानी में कहा।

"चच···चच ऐसा भी बोलता है, इतना गुड ब्वाय होकर, क्षमा माँगो पापाजी से !"

बच्चे ने वहीं खड़े-खड़े हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। पर उसके पापाजी ने उसकी क्षमा-याचना का कोई उत्तर नहीं दिया, हाथ का सामान

१. नहीं, नहीं; वहां बैठो, वहां !

मेज़ पर एक बरसाती उतारी और मौन रूप से उसे खूँटी पर टाँगने लगे।

माँ ने समझा, बच्चे का ध्यान बँट गया है। बोली, "वेरी गुड ब्वाय! लो बैठो, मैं अभी आती हूँ चाय लेकर।"

लेकिन बच्चे ने फिर ममी का पल्लू पकड़ लिया।

अपने पति की ओर देखकर श्रीमती कोलार्कर ने कहा, "तनिक इसे इधर रखो तो मैं चाय ले आऊँ। बाहर पानी गिरने लगा है।"

श्री कोलार्कर ने उत्तर में बरसाती टाँगकर खूँटी से छाता उतारा, उसे चुपचाप पत्नी के हाथ में दिया और जाकर निर्जीव-से बिस्तर पर लेट गए।

श्रीमती कोलार्कर का समस्त क्रोध अपने बच्चे पर निकला—"एकदम गन्दा बाबा है, कहना नहीं मानता, हम दूसरा बाबा लायेगा!" और छाता खोल, बच्चे को कूल्हे से लगाए, वे बकती-झकती रसोईघर की ओर चली गईं।

जब से श्री कोलार्कर पंचगनी आये थे, लगभग रोज़ ऐसा होता था। रसोईघर बँगले से तनिक दूर था और नन्हा तुलसीराव कभी अपनी ममी की साड़ी का पल्लू और कभी आया की स्कर्ट का दामन थामे रसोईघर से बँगले और बँगले से रसोईघर के बीच चक्कर लगाता, कई बार 'गुड' और कई बार 'डर्टी' बनता।

बम्बई में श्री कोलार्कर का फ्लैट वालकेश्वर रोड पर शीतल बाग़ के बराबर था। बिल्डिंग के दूसरे म्हाले[1] पर वे रहते थे और नन्हा तुलसीराव अपनी ममी अथवा आया को तंग करने के बदले कभी ऊपर की मंज़िल और कभी नीचे की मंज़िल में, इस या उस 'आंटी' ही को परेशान किया करता और उसकी माँ तथा आया उसे 'गुड ब्वाय', 'वेरी वेरी गुड ब्वाय' समझा करतीं। वह न केवल अपनी माँ का प्यारा था, बल्कि आया भी उसे खूब चाहती थी। उसकी सिखाई हुई मराठी मिली हिन्दुस्तानी में वह ऐसी प्यारी-प्यारी बातें करता कि दोनों उसे चूम-चूम

१. मंज़िल।

लेतीं। उसके पापा जब प्रातः उठते (रात को श्री कोलार्कर देर से घर आते, इसलिए पिता-पुत्र में कम ही भेंट होती) तो वह उन्हें अपने कमरे ही से 'गुड मार्निंग' बुलाता। फिर अपनी ममी की गोद मे चढ़े-चढ़े जाकर उन्हें किस्सी (kissy) देता और गुड ब्वाय की उपाधि लेकर ममी के गले में बाँहें डाले वापस आ जाता। अपने फ्लैट में तो वह मुँह-हाथ धोने, कपड़े बदलने, नाश्ता करने, खाना खाने या सोने के समय ही रहता, उसका शेष समय तो पड़ोसिन आंटियों और उनके बच्चों से खेलने या आया के साथ चौपाटी की सैर करने में व्यतीत होता।

किन्तु पचगनी में न पड़ोसिन आंटियाँ थीं, न उनके बच्चे थे, न चौपाटी की सैर थी और न आया ही उसका मन बहलाती थी। श्री कोलार्कर ने पचगनी में जो बँगला किराये पर लिया था, वह निपट एकान्त स्थान में बना हुआ था। दूर-दूर तक बच्चा तो क्या, कोई बूढ़ा भी दिखाई न देता था। इसके अतिरिक्त आया अब उसका काम देखने के बदले रसोई का काम देखने लगी थी और बच्चा नितान्त अकेला पड़ गया था।

सहसा जब डॉक्टरों ने श्री कोलार्कर के दाएँ फेफड़े में कुछ इनफिल्ट्रेशन अर्थात् यक्ष्मा के कीटाणुओं के हल्के-से आक्रमण की आशंका प्रकट की और श्री कोलार्कर ने अपने और अपने ससुर के समस्त बल-प्रभाव का प्रयोग करके पचगनी मे, जो बम्बई प्रेज़िडेन्सी मे सबसे शुष्क स्वास्थ्यकर स्थान समझा जाता है, अपनी बदली करा ली तो उनके रसोइये ने साथ चलने से इनकार कर दिया। तब अचानक उनकी आया ने प्रस्ताव किया कि यदि उसकी 'पगार'[1] बढ़ा दी जाए और मेम साब उसकी कुछ सहायता करें तो वह किचन का काम सँभाल लेगी। श्री कोलार्कर ने तुरन्त उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। नन्हा अब ढाई वर्ष का होने को आया था, उसका काम घट गया था और पति-पत्नी आया को छुट्टी देने की सोच रहे थे, किन्तु जब आया किचन का काम सँभालने को तैयार हुई और श्रीमती कोलार्कर ने बच्चे को नह-

१. वेतन

आना-जाना अपने जिम्मे ले लिया तो श्री कोलार्कर ने उसका वेतन पाँच रुपये बढ़ा दिया और उसे अपने साथ कंपनी में पाए।

इस प्रबन्ध से सभी प्रसन्न थे। किसन की शासना से बच्चे की शासना श्रीमती कोलार्कर को ज़्यादा पसन्द थी। श्री कोलार्कर को अच्छे-से-अच्छा खाना मिल जाता था—आशा के विपरीत आया रसोइए से भी अच्छी चीजें पका लेती थी। रही आया, तो इस महँगाई के ज़माने में उसे मनचाहा खाना मिल जाता, बच्चों की कपड़ों की धुलाई के बहाने सनलाइट साबुन की सुगन्ध मिलती और आया से बढ़कर 'मिस्तरी' (गवर्नेस) होने पर वह फूली न समाती।

किन्तु बच्चा गुलगोथना इस प्रबन्ध से बहुत परेशान था। जब वह खेलना चाहता तो मम्मी और आया दोनों ही उसे किसी-न-किसी काम में व्यस्त मिलतीं। आया चाहती कि अब, जब वह आया से मिस्तरी हो गई है, उसे बच्चे की 'गवर्नेसी' से मुक्त किया जाए। जब बच्चा अपने स्वभावानुसार उसकी साड़ी का छोर पकड़ता तो वह भिन-भिनाती। श्रीमती कोलार्कर चाहतीं कि वे नहला-धुलाकर उसे कपड़े पहना दें तो वह अकेला चटाई पर बैठा खिलौनों से खेलता रहे और वे कोई दूसरा काम करें। लेकिन बच्चा खिलौने छोड़कर उनकी साड़ी का आँचल पकड़े उनके पीछे-पीछे घूमता, परेशान करता, पिटता, किन्तु पिटने और रोने पर जैसा कि उसे सिखाया गया था 'अब ऐसा नहीं करेंगा!' कहता हुआ क्षमा माँग लेता और 'सन्धि' कर लेता।

वह अत्यन्त सुन्दर, गुलगोथना, गुबला-गुबला बच्चा था। जब वह अपराध करने और पिटने पर क्षमा माँगता और गले में बाँहें डालकर सन्धि कर लेता तो श्रीमती कोलार्कर सब-कुछ भूलकर, उसे छाती से लगा लेतीं और 'गुड ब्वाय' की उपाधि प्रदान करती हुई चूम-चूमकर उसके गाल लाल कर देतीं।

किन्तु इसके बावजूद वे उसे दिन में कई बार पीटतीं और कई बार क्षमा करतीं। कई बार 'गुड ब्वाय' और कई बार 'डर्टी ब्वाय' की उपाधि से विभूषित करतीं।

बाहर वर्षा पूर्ववत् हो रही थी, किन्तु हवा तेज चलने लगी थी। सिलवरग्रोक के गगनचुम्बी, किन्तु देवदार की अपेक्षा पतले तनों वाले वृक्षों के पत्ते उसके वेग से दोहरे हुए जा रहे थे और उनके पृष्ठ-भाग का हल्का हरा रंग शेष वृक्षों के मूँगी के-से गहरे सब्ज रंग की पृष्ठभूमि में विचित्र-सा लग रहा था। बादलों के झुण्ड-के झुण्ड, अनवरत विजय, आत्मरण और मदिरा के तिहरे मद से उन्मत्त सैनिकों की तरह उड़े जा रहे थे। वर्षा के थपेड़े खिड़कियों के शीशों को तोड़े डालते थे और टीन की छत पर फैले हुए बाँस के वृक्षों की शाखाएँ अपने बड़े-बड़े काँटे निरन्तर छत में गाड़ती हुई चिंघाड़ रही थी। श्री कोलाकर खिड़की के पास चारपाई पर निष्प्राण-से पड़े थे। यद्यपि छः महीने में ही उनका वजन बाईस पाउण्ड अर्थात् पूरे ग्यारह सेर बढ़ गया था और उनके कल्ले, जो बम्बई के अत्यन्त व्यस्त और मर्यादारहित जीवन के कारण भीतर धँस गए थे और दिन-प्रतिदिन काले पड़ते जा रहे थे, अब भर आए थे और उस भयानक रोग की छाया भी, जो बम्बई में अचानक उन्हें लीलता हुआ दिखाई देता था, अब दूर होती जा रही थी, किन्तु इस पर भी लगता था जैसे उनकी कोई बहुत प्यारी चीज बम्बई ही में रह गई है।

दफ्तर का अधिकांश काम उन्होंने अपने एक सहकारी पर छोड़ रखा था। राजयक्ष्मा पर लिखी हुई एक पुस्तक में उन्होंने पढ़ा था कि रोग से मुक्त हो जाने पर भी रोगी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि सम्भव हो तो वह चलने की अपेक्षा खड़े रहकर और खड़े रहने की अपेक्षा बैठकर काम करे और वे दफ्तर में ज्यादातर आराम-कुरसी पर लेटे कागजों पर हस्ताक्षर करते थे। लंच के समय भी वहीं खाना खाकर ऊँघ लेते। साहित्य और राजनीति में उन्हें कभी दिल-चस्पी न थी और अब तो देश का वातावरण दूषित होने के कारण खबरें बड़ी परेशान करने वाली होतीं और डॉक्टरों के परामर्शानुसार हर तरह की परेशानी को अपने से दूर रखने के हेतु वे समाचारपत्र को उठाकर भी न देखते थे।

दफ्तर का समय किसी-न-किसी तरह काटकर जब वे घर आते तो

उन्हें ऐसा लगता जैसे समय एक बड़ा भारी पत्थर बनकर उनकी छाती पर आ बैठा है। श्रान्त-क्लान्त, ऊबे और खिन्न-से वे खिड़की के पास बिछे हुए पलंग पर निर्जीव-से लेट जाते। उनकी पत्नी घर अथवा किचन के काम में व्यस्त होती। उनका बच्चा 'हैलो पापा,' 'गुड ईवनिंग पापा' से उनका स्वागत करता। श्री कोलार्कर थके हुए स्वर में कभी मन्द 'हैलो' और 'गुड ईवनिंग' का उत्तर देते और कभी मौन रहते, पर कभी उसे इतना प्रोत्साहन न देते कि वह उनकी गोद में आ चढ़े या अपनी भोली-भोली बातों से उनका मन बहलाए।

श्री कोलार्कर को कभी बच्चों से प्रेम न था और जिन वस्तुओं से उन्हें प्रेम था, उनका सामीप्य अब न केवल उन्हें प्राप्त न था, वरन् उनकी स्मृति सताती भी थी। वहीं पलंग पर निष्प्राण-से लेटे उन्हें प्रायः रेडियो-क्लब की वे दिलकश, सुहावनी शामें याद हो आतीं, जब हरी-हरी घास पर रखी किसी कुर्सी पर बैठे और समुद्र-तट का दर्शन करते हुए ऐसा लगता, मानो जहाज के डेक पर बैठे हों। क्लब के लॉन की ऊँचाई से बाईं ओर समुद्र की आकुल लहरें; उनमें लंगर डाले, संन्यासियों-से अटल जहाज; दाईं ओर गेट वे ऑफ इण्डिया और ताज की बिल्डिंग; वहाँ तक जाती हुई बाँध के साथ बनी हुई सड़क—सब-कुछ बड़ा भला लगता। आकुल ऊर्मियाँ बाँध के पत्थरों के साथ टकरातीं और झाग बिखेरती हुई लौट जातीं और कभी-कभी उनसे कहीं अधिक व्यग्र कोई स्टीमर उन संन्यासियों की भाँति समाधिस्थ जहाजों में किसी एक तक जाता और अपने पीछे सफ़ेद झाग की एक लहर-सी छोड़ जाता। श्री कोलार्कर समुद्र की लहरों, जहाजों और दूर पृष्ठभूमि में एलीफ़ेण्टा की पहाड़ी को संध्या के धुँधलकों में उन संन्यासियों ही की भाँति अटल, अविचल खड़े देखते और तुष्टि की एक अपूर्व अनुभूति से ओत-प्रोत हो जाते। प्याले की तरल आग रस ले-लेकर गले से उतारते और सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश लगाते। धीरे-धीरे उनके दूसरे मित्र भी आ जाते और फिर ब्रिज का दौर चलने लगता और गई रात तक चला करता। जब वे घर आते तो उनका बच्चा सो चुका होता, पत्नी

कोई मराठी उपन्यास हाथों में लिये ऊँघती हुई उनकी प्रतीक्षा कर रही होती और उनको सुलाते ही सो जाती।

ज्योंही डॉक्टर ने इस रोग का निदान किया था, उन सबकी उन्हें सख्त मनाही हो गई थी। यद्यपि ये चीजें श्री कोलाकर को अत्यन्त प्रिय थीं, किन्तु जीवन कदाचित् इनसे भी प्रिय था, इसलिए इन सबको नमस्कार कर, उन्होंने पंचगनी में अपनी बदली करा ली थी। कुछ महीने छुट्टी लेकर घर में पूरा आराम किया था और अब डेढ़-दो महीने से जो दफ्तर जाने लगे थे तो भी काफी आराम करते थे।

शराब और सिगरेट तो सदा के लिए छूट गए थे, किन्तु यदि वे चाहते तो अब ब्रिज की एक-आध बाजी खेल सकते थे। उनका स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा सुधर गया था, वजन बढ़ गया था और सेंटिमेण्ट नार्मल हो गया था, अर्थात् उनके रक्त में रोग का प्रभाव खत्म हो गया था। लेकिन पंचगनी इतनी छोटी जगह थी और उनका पद ऐसा था कि वे मित्र बनाते हुए डरते थे। यदि कोई पुराना मित्र भी सामने पड़ जाता तो वे सदा कन्नी काट जाते। बम्बई में वे वालकेश्वर रोड पर रहते थे, शान्ताक्रूज़ में राशनिंग अफ़सर थे और कोलाबा में उनका क्लब था। उनके मित्रों में एक भी ऐसा न था, जो उनकी मैत्री का अनुचित लाभ उठा सकता। पंचगनी में उन्हें भय था कि उन्होंने कोई मित्र बनाया कि उसने चार व्यक्तियों के राशन कार्ड नियम के विरुद्ध रखे या कोई दूसरी माँग की। इसलिए वे सबसे अलग-थलग बने रहते थे।

बाजार छोटा-सा था और जो थोड़ी-बहुत रौनक उसमें थी, वह भी वर्षा के कारण समाप्त हो गई थी। यों भी वर्षा में किसी प्रकार की सैर असम्भव थी। वर्षा तो बम्बई में भी होती, पर इसके बावजूद चिर-चपल बम्बई का जीवन सदा क्रियाशील रहता। पंचगनी में तो लगता, जैसे जीवन एकदम थम गया है, जैसे दिनों, सप्ताहों, महीनों अनवरत गिरने वाली इस वर्षा ने उसे सर्वथा गतिहीन बना दिया है। श्री कोलाकर चेष्टाहीन-से पलंग पर लेटे रहते। पल घड़ियाँ बनकर बहे जाते और वे चुपचाप लेटे बाहर वाटिका में एक ही पंक्ति में लगे हुए सिल-

मनीप्लांट की लता को सजाते रहते, जिनके पत्ते पता नहीं क्यों रात में भी बहुत उदास थे। फिर टेबल-लैम्प [illegible] में चमकते हुए [illegible] की झिल-मिल, [illegible] और इन उदास पत्तों की [illegible] और भी [illegible] कहीं [illegible] छोटी-सी प्रतीत होती।

आया एक हाथ पर चाय की ट्रे और दूसरे में बच्चा थामे हुए अन्दर से आती। बच्चा साथ आने का हठ करता था, इसलिए श्रीमती कोलार्कर ने चाय आया ही के हाथ भेज दी थी। आया बूढ़ी थी और कुरूप, और श्री कोलार्कर को उसका चाय लाना एक आँख न भाता था। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी कम-से-कम चाय के समय तो उनके पास बैठें। और कुछ नहीं तो वे उनके साथ ही कुछ क्षण बातें करें। आरम्भ में श्रीमती कोलार्कर ने प्रयास भी किया था, किन्तु वे जब भी आतीं, नन्हा तुलसीदास सदा उनके साथ आता। वह इतना चंचल और उद्दण्ड बालक था कि क्षण-भर के लिए निश्चल न बैठता। वह उन्हें बात तक न करने देता। चाहता कि उसके पापा और ममी परस्पर बातें करने के बदले उससे बातें करें और उसकी बातें सुनें। श्री कोलार्कर के लिए चाय पीना दूभर हो जाता। कुछ क्षण संयत रहने की चेष्टा करने के बाद सहसा वे चिल्ला उठते, "इस पाजी को मेरे सामने से ले जाओ !" और अब, जब उनकी पत्नी अपनी इच्छा के बावजूद स्वयं न आ पातीं, श्री कोलार्कर मन-ही-मन खीझते, किन्तु बच्चे की निरर्थक बातें सुनने की अपेक्षा अकेले ही चाय पीना श्रेयस्कर समझते।

यह अजीब बात थी कि श्री कोलार्कर को अपनी पत्नी का यह महत्व बम्बई में कभी अनुभव नहीं हुआ। वे दफ्तर से लोकल ट्रेन में सीधे 'चर्च गेट' और वहाँ से क्लब पहुँचते और जब लौटते तो खाना खाकर (और जब कभी वे खाना क्लब ही में खा लेते तो बिना खाए) सोने के अतिरिक्त उनके लिए और कुछ न रह जाता। कभी छुट्टी के दिन फ़ोर्ट या क्राफ़ोर्ड मारकेट में शॉपिंग करते समय या कभी किसी संध्या अपने किसी मित्र की पार्टी में वे अवश्य उसे साथ ले जाते।

किन्तु उस समय भी उनकी पत्नी का अपना महत्व कुछ न होता—उसकी बहुमूल्य साड़ी, नये-से-नये फैशन के सेण्डल, नरोत्तमदास भाऊ की दुकान से खरीदी हुई उसकी दीप्तिमयी अँगूठियाँ तथा कर्णफूल, उसके मुख का सौम्य-सौन्दर्य और उसकी ऊँची प्रशा का पता देने वाली उसकी वह सूक्ष्म मुस्कान—सब श्री बालकृष्ण विट्ठलराव कोलार्कर के महत्व को बढाते। जहाँ तक साहचर्य का सम्बन्ध है, उन्हें तो यह भी ज्ञान न था कि उनकी यह संगिनी अपना समय कैसे बिताती है।

आया ने चाय का प्याला बनाकर साहब के समीप एक तिपाई पर रख दिया और एक प्लेट मे उबला हुआ अण्डा और नमक ले आई।

श्री कोलार्कर पूर्ववत् लेटे सिलवरओक के तनो को देखते रहे। उन्होंने एक बार भी आया की ओर नही देखा। वे आज आते-आते बाजार से ताश का एक पैकेट और ड्राफ्ट का एक बोर्ड ले आए थे। जिस डॉक्टर से वे इंजेक्शन आदि लेते थे, उसके ड्राइंग-रूम में उन्होंने सध्या समय लोगो को प्रायः ड्राफ्ट या ताश खेलते देखा था। उनके कुछ इन्स्पेक्टर भी सदैव खेलने वालो में होते। श्री कोलार्कर का मन बहुत चाहता कि कुछ क्षण उनके साथ आ बैठें और ड्राफ्ट के एक-दो बोर्ड या ताश की एक-दो बाजियाँ खेलें, किन्तु क्लर्को और इन्स्पेक्टरो से मिलना-जुलना वे उतना ही बुरा समझते थे, जितना जान-पहचान वालों से। हर बार वे अपनी इस अभिलाषा को मन ही में दबा लेते थे। आज जब वे दफ्तर से आते-आते डॉक्टर से इंजेक्शन लेने गये और सदा की भाँति ड्राफ्ट की महफ़िल जमी हुई देखी तो जाने क्यो वापसी पर आते-आते वे 'पंचगनी स्टोर्ज' से ड्राफ्ट का बोर्ड और ताश का एक पैकेट लेते आए। किन्तु उनकी पत्नी को तो उनसे दो बात तक करने का अवकाश न था और वे दोनों चीजें उसी प्रकार कागज मे बँधी मेज पर पड़ी थी और श्री कोलार्कर निर्जीव-से पलंग पर लेटे हुए सिलवरओक के बेजान तनों को तक रहे थे।

"साहब, चाय ठण्डा हो जायेगा।" आया कुछ क्षण साहब के उठने की प्रतीक्षा करके बोली।

"तुम जाओ, हम पीता है।" श्री कोलाकर ने उसी प्रकार लेटे-लेटे कहा, "और मेम साहब को अवकाश हो तो ऊपर भेजना।"

किन्तु मेम साहब को आज अवकाश नहीं मिला। संध्या को श्रीमती कोलाकर प्रायः रसोईघर से चलकर बंगले में आ जाती थीं, ताकि वर्षा और अँधेरे में रसोईघर न जाना पड़े। पराँठे पकाने और दूसरा सामान लाने-ले जाने उन्हें देर लग गई। जब बच्चे को आया के सुपुर्द करके और यह आदेश देकर कि उसे जल्दी खाना खिला दिया जाए, वे आखिर आयीं तो श्री कोलाकर का मन बात तक करने को न हो रहा था। वे रोमांस-लोक के जीवन की सुन्दर-सुन्दर कल्पनाओं में खोये हुए थे और नहीं चाहते थे कि कोई आकर उन्हें छिन्न-भिन्न कर दे। जब श्रीमती कोलाकर उनके पास पलंग की पट्टी पर आ बैठीं और अपनी व्यस्तता और बच्चे के हठ का ज़िक्र करते हुए देर के लिए उन्होंने क्षमा माँगी और बुलाने का उद्देश्य पूछा, तो श्री कोलाकर ने जैसे किसी दूसरी दुनिया बोलते हुए केवल इतना कहा—

"मैं आज आते-आते बाजार से ताश और ड्राफ्ट लाया था, सोचा था यदि कुछ समय हो तो स्वीप की एक-दो बाजियाँ खेलें, किन्तु अब तो रात हो गई।"

"तो फिर क्या हुआ ?" श्रीमती कोलाकर ने उनका दिल बढ़ाते हुए कहा, "बस, ज़रा जल्दी खाना खा लीजिए, फिर खेलते हैं।" और यह कहकर वे अपने पति के खाने का प्रबन्ध करने के लिए उठकर चली गईं।

रात को खाने आदि से निवटकर श्रीमती कोलाकर अपने पति का बिस्तर झाड़कर बिछाती थीं और फिर बच्चे को सुलाती थीं। आया बूढ़ी थी और फिर कमरों की सफ़ाई करते, बरतन मलते, बाज़ार से सामान लाते, रसोईघर से बंगले और बंगले से रसोईघर के बीसियों चक्कर लगाते हुए थक जाती। इसलिए ज्योंही खाना आदि समाप्त होता, वह बड़े कमरे में चटाई बिछाकर उस पर अपना बिस्तर लगा लेती और उस समय, जब मेम साब नन्हे को 'चिमनी-कावड़े'[1] या

रंगू तोते की कहानी सुनाकर, या अँग्रेज़ी बोलना सिखाकर सुलाने की चेष्टा करतीं, आया बड़े मज़े से सो जाती।

जब खाना आदि समाप्त हो गया और आया रोज़ की भाँति बिस्तर बिछाकर लेट गई तो श्रीमती कोलार्कर ने बच्चे को स्वयं सुलाने के बदले उसे आया के सुपुर्द किया, दबे स्वर में साहब की इच्छा का जिक्र किया और कहा कि इसे ज़रा सुलाओ और स्वयं पति की इच्छा का पालन करते हुए उनके सम्मुख जा बैठी।

श्री कोलार्कर को स्वीप खेले वर्षों बीत गए थे। विवाह के प्रथम दिनों में, अपनी नव-परिणीता संगिनी की प्रसन्नता के लिए उन्होंने महीना-भर उसके साथ स्वीप खेली थी। किन्तु उन दिनों उनके लिए स्वीप खेलना अपनी पत्नी से बातें करने का बहाना-मात्र था और जब विवाह के दो महीने बाद ही उनकी पत्नी बच्चे से होकर अपने मैके चली गई और श्री कोलार्कर ने क्लब की शरण ली तो आज ढाई-तीन वर्ष से ब्रिज ही उनकी एक-मात्र संगिनी थी। ब्रिज के सामने स्वीप उन्हें ऐसी ही लगती, जैसी आधुनिकतम वस्त्रों में सजी-सँवरी किसी तन्वी के सामने प्रागैतिहासिक काल की कोई सुन्दरी। फिर भी जब उनकी पत्नी उनके सम्मुख आ बैठी तो अपने एकान्त की घुटन दूर करने के लिए श्री कोलार्कर ने कुछ उत्साह से पत्ते बाँटे।

किन्तु तभी नन्हा तुलसीराव, जो आया से मोथा के चूहे की 'हूँ' 'हूँ' वाली कहानी सुन रहा था और उसके पापा और ममी समझ रहे थे कि सोने ही वाला है, 'ममी, हम भी खेलेंगा, ताश-पत्ते खेलेंगा' कहता और भागता हुआ आया और श्रीमती कोलार्कर की गोद में बैठ गया।

ममी ने उसे चूमकर बड़े प्यार से कहा, "जाओ बेटा, आया के पास सोओ!"

"सोता नहीं," बेटा बोला, "खेलता है।"

"आया तुम्हें कहानी सुनाएगी, बड़ी चाँगली[1]।"

१. चिड़िया-कौवे।

"मैं हाथी नहीं सुनता, खेलता है, ममी साथ खेलता है।"

श्री कोलार्कर ने अपने बच्चे की ओर देखा, उनकी त्योरी चढ़ गई। उन्हें पहली बार अनुभव हुआ कि उनका यह बच्चा, जो प्रातः ही अपने कमरे में उन्हें 'गुड मार्निंग' सुनाता था और फिर माँ के कन्धे से लगे-लगे उन्हें गुडबाय दे जाता था और जिसे वे बड़ा शिष्ट समझते थे, एकदम बदतमीज़ है।

उस समय उनकी पत्नी बच्चे को समझा रही थी,—"तंग नहीं करते बेटा, पापाजी के पत्ते नहीं लेते, अपने खिलौनों से खेलते हैं।" और बेटा चिल्ला रहा था—"खिलौने गन्दे हैं, खिलौनों से खेलता नहीं, पत्ते खेलता है।" वह मचल रहा था और हाथ-पाँव पटक रहा था।

'अत्यन्त उद्दण्ड लड़का है, माँ ने तनिक भी शिष्टता नहीं सिखाई।' श्री कोलार्कर ने मन-ही-मन कहा और उनके जी में आया कि तड़ से दो थप्पड़ उस बदतमीज के गाल पर जड़ दें, किन्तु तभी उन्हें कुछ प्रेरणा-सी हुई और उन्होंने अपने और अपनी पत्नी के सामने पड़े हुए पत्तों को उठाकर बच्चे के हाथ में दे दिया और कहा, "जा, उधर आया के साथ खेल।"

"आया साथ नहीं खेलता, पापाजी साथ खेलता है।"

श्री कोलार्कर की त्योरी फिर चढ़ गई, किन्तु उनकी पत्नी बच्चे को उठाकर आया के पास छोड़ आईं और उससे धीरे से कहा, "आया, इसे ज़रा खिलाओ।" पुत्र को अतीव स्नेह से चूमा और बोलीं, "बड़ा अच्छा बेटा है, ममी को तंग नहीं करता। आया के साथ खेलता है।" और जब बेटे ने वही वाक्य दोहराया और बड़े आदेशपूर्ण स्वर में आया से कहा, "हमारे के साथ पत्ते खेलो!" तो उसकी ममी उसके पापा के पास लौट आईं।

श्री कोलार्कर का उत्साह इतने ही में ठंडा पड़ चुका था, किन्तु फिर भी उन्होंने अपनी प्रेरणा के अनुसार, "चलो एक ड्राफ़्ट ही की गेम खेलते हैं।' कहते हुए ड्राफ़्ट की बिसात बिछाई और उस पर

१. बड़ा अच्छा।

मोहरे लगाने लगे।

किन्तु उनकी पत्नी ड्राफ्ट के खेल से अनभिज्ञ थीं। धीमे से उन्होंने कहा, "मुझे तो ड्राफ्ट आता नहीं।"

कोलार्कर झुंझला उठे, "तुमने बी० ए० कर लिया और तुम्हें ड्राफ्ट खेलना नहीं आता ?"

बड़े आदर के साथ पत्नी ने विनय की कि बी० ए० में उन्हें ड्राफ्ट नहीं सिखाया गया।

श्री कोलार्कर को बड़ा क्रोध आया, किन्तु खेलने की मानो उन्हें जिद हो गई थी। बोले, "आसान खेल है। ये मोहरे शतरंज के फ़ील ही की तरह एक घर टेढ़ा चलते हैं, किन्तु जब अन्तिम घरों में पहुँच जाते हैं तो फिर आगे-पीछे दोनों ओर जितने घर चाहें एक साथ फलाँग सकते हैं।" और उन्होंने मोहरा चलकर दिखाया। फिर जैसे कुछ स्मरण हो आने से बोले, "एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि प्रतिद्वन्द्वी का कोई मोहरा मरता हो तो उसे मारना आवश्यक है, न मारा जाएगा तो जुरमाने के रूप में वही मोहरा देना पड़ेगा।"

और यह सब समझाकर उन्होंने चाल चली।

उनकी पत्नी ने जवाबी चाल चली तो उन्होंने समझाया कि यह नहीं, यह चलो तो अच्छा है। उसने वही चल दी।

किन्तु अभी खेल चन्द चालों से आगे नहीं बढ़ा था, जिससे उनकी पत्नी की 'मूढ़ता' उन पर पूर्णतया सिद्ध हो गई थी, उसके लगभग सारे मोहरे मर गए थे, और श्री कोलार्कर का समस्त आनन्द किरकिरा हो गया था और उनकी इच्छा हो रही थी कि बिसात को उलटकर बिस्तर में जा लेटें कि नन्हा तुलसीराव नये ताश के अस्त-व्यस्त पत्तों को दोनों हाथों में सँभालता और उन्हें फ़र्श पर गिराता भागा आया और ड्राफ्ट के मोहरों की ओर संकेत करके चिल्लाने लगा, "दो-चार लँगा, ममी दो-चार लँगा।"

चार-छः महीने पहले, जब वे बम्बई में थे, श्रीमती कोलार्कर ने एक दिन बच्चे को ड्राफ्ट के मोहरों-जैसे गोल टुकड़े लाकर दिये थे,

"नहीं करेंगा !" सिसकियों के मध्य बच्चे ने उत्तर दिया ।

और प्रबल इच्छा-शक्ति से, घने मेघों में झलक उठने वाले सूक्ष्म-से प्रकाश-सी मुस्कान अपने ओठों पर लाकर उनकी पत्नी ने बच्चे को छाती से भींचते हुए कहा—"मेरा बेटा बड़ा गुड ब्वाय है, पापाजी से क्षमा माँग लेता है ।"

और नन्हे ने रोते हुए कहा, "पापाजी, क्षमा करो जी !"

"सन्धि करो पापाजी से !"

और वह नन्हे को कन्धे से लगाये हुए अपने पति के पास ले गई और माँ की गोद से उतरकर रोते-रोते बच्चा श्री कोलार्कर के गले से चिपट गया ।

सहसा श्री कोलार्कर के कण्ठ में कुछ गोला-सा उभर आया। उन्होंने अनायास बच्चे को हृदय से भीच लिया । उनके नेत्र सजल हो गए, किन्तु उनकी पत्नी उनकी यह दुर्बलता न देख लें, इस विचार से उन्होंने प्रकट अपनी उदासीनता को बनाये रखा और कहा, "बस-बस !" और उसे अपनी पत्नी को वापस दे दिया ।

दूसरे कमरे में श्रीमती कोलार्कर बच्चे को सुला रही थीं और नींद-भरे स्वप्निल स्वर में सिसकते-सिसकते माँ के साथ-साथ बच्चा कह रहा था, "पापाजी को तंग नहीं करता, अपने पत्तों से खेलता है, बाजार से दो-चार लायेंगा, पापाजी का खेल नहीं छेड़ेंगा !" और अपने कमरे में श्री कोलार्कर बिस्तर पर लेटे बड़ी बेचैनी से करवटें बदल रहे थे ।

माँ के स्निग्ध, सजल चुम्बनों से नन्हे के नेत्र मुँद गए और वह सो गया, किन्तु निद्रावस्था में भी वह सिसक रहा था। करुणा और स्नेह से अभिभूत एक दृष्टि उस पर डालकर श्रीमती कोलार्कर अपने पति के कमरे में आयीं ।

"क्यों, सोए नहीं ?"

"नींद नहीं आ रही ।"

"सर दबा दूँ ?"

"नहीं।"

"जानता हूँ, मैंने बच्चे को पीट दिया।"

"फिर क्या हुआ, मैं नहीं पीटती क्या ?"

किन्तु श्री कोलार्कर को संतोष न हुआ। बोले, "मुझे स्वयं ही गुस्सा आ गया। बच्चा तो बच्चा ही है। इस प्रकार पीटने से बच्चे के दिल में डर बैठ जाता है।"

"डर किसी का तो होना ही चाहिए, मुझसे तो जरा भी नहीं डरता।"

श्री कोलार्कर का अहम् सन्तुष्ट हुआ, किन्तु उनकी झुँझलाहट दूर न हुई। उन्होंने अपनी पत्नी से जाकर सोने के लिए कहा और करवट बदल ली।

श्रीमती कोलार्कर कमरे की बत्ती बुझाकर चुपचाप चली गईं। अपने कमरे में जाकर उन्होंने टेबल-लैम्प भी बुझा दिया ताकि उनके पति की नींद में किसी प्रकार की बाधा न पड़े।

किन्तु उस घने अन्धकार में समस्त घटना अपने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरण के साथ श्री कोलार्कर के सामने घूम गई और यह सोचकर कि उन्होंने बच्चे को निपट निर्दोष पीटा है, उनकी नींद बिलकुल उड़ गई।

एक घण्टे के बाद उनकी पत्नी फिर उनके कमरे में आयीं।

"सोये नहीं क्या ?"

कोलार्कर सहसा हँस दिए, "नींद नहीं आई।"

"आप तो नन्हे से बढ़ गए।" वह उनके सिरहाने आ बैठीं और बड़े प्यार से उनका सिर दबाते हुए बोलीं, "उसे तो कुछ याद भी न रहेगा, देख लीजिएगा, प्रातः उठते ही आपको 'गुडमार्निंग' बुलाएगा और अब तंग भी न करेगा। कभी-कभी दो-चार थप्पड़ लगाने में कोई हानि नहीं !" और इस प्रकार सान्त्वना देते हुए वह उनकी कनपटियाँ सहलाने लगीं।

कुनमुनाकर श्री कोलार्कर ने अपना सिर अपनी पत्नी की गोद में

रख दिया।

दस मिनट ही में वे खर्राटे लेने लगे।

बहुत धीरे-से उनकी पत्नी ने उनका सिर पुनः तकिये पर टिका दिया। बिना शब्द किये बिस्तर से उतरी, क्षण-भर उन्हें सोये हुए देखती रही, फिर दूसरे कमरे में जाकर उन्होंने अनायास अपने सोये हुए बच्चे को चूम लिया।

तकल्लुफ़

"आयें जनाब शौक से घर आपही का है।"
(दिल में है यह मगर कि कहीं सच ही आ न जाएँ,
फंदे से इन जनाब के भगवान् ही बचाएँ!)

अपनी पत्नी को चाय और नाश्ते की सामग्री के सम्बन्ध में सब-कुछ समझाकर, रशीद भाई बालकनी में आये। उन्होंने दरी की सिलवट निकाली, तिपाई के रंगीन कवर को झाड़कर फिर बिछाया, बेंत की कुरसियों की गद्दियाँ ठीक से रखीं, दीवार पर टँगे चित्रों के फ्रेम साफ किये, तनिक पीछे हटकर बालकनी की उस सीधी-सादी लेकिन साफ़ और सुरुचिपूर्ण सजावट पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालकर संतोष की साँस ली, कुरसी में धँसकर पाँव रेलिंग पर पसार दिए और डायरेक्टर क़ादिर और उनकी बेगम के आने की प्रतीक्षा करने [illegible]

[illegible] छोटे आदमी थे। मोटे थे, लेकिन थल-[illegible], बाजू, पेट, रान, पिंडलियाँ

सब उनके क़द को देखते हुए, मांस से भरे थे, परन्तु मांस कहीं भी लटकता न था—न उनके फूले-फूले गालों पर, न गरदन पर न पेट पर, न और कहीं। कदाचित् यही कारण था कि अपने मोटापे के बावजूद उनमें काम करने की अपूर्व शक्ति थी। वे फ़िल्मों के लिए गीत लिखते थे; कहानी, संवाद और सिनारियो लिखते थे; अवसर मिलने पर अभिनय भी कर लेते थे और इन सबके लिए जिस दौड़-धूप की आवश्यकता होती है, उससे भी जी नहीं चुराते थे। लेकिन इस सब निष्ठा और परिश्रम के बावजूद (उनका गुजारा चाहे चलता रहा हो) उन्हें ख्याति पाने का कोई समुचित संयोग न मिला था। उनकी प्रतिभा (ऐसा उनका विचार था) स्टंट फ़िल्मों के दलदल में खत्म हुई जा रही थी और वे निरन्तर उसे बचाने के प्रयास में लगे रहते थे। उनकी बड़ी साध थी कि उन्हें किसी 'सोशल पिक्चर' की कहानी (न हो तो सम्वाद ही) लिखने का अवसर मिल जाए। एक बार अवसर मिला, तो उन्हें आशा थी कि वे स्टंट के दलदल से सदा के लिए निकल जाएँगे। फिर ' फिर'' उनके स्वप्न सिनेमा की दुनिया में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की भाँति डायरेक्टरी से होते हुए प्रोड्यूसरी के शिखर पर जा पहुँचते थे।

दरवाजे पर दस्तक हुई। रशीद भाई उचककर उठे, जैसे उन्हें स्प्रिंग लगा हो। ओंठों पर वे हल्की-सी अभिवादनोचित, खुशामद-भरी मुस्कान ले आए और धड़कते हुए दिल के साथ उन्होंने दरवाज़ा खोला। वे आदाब अर्ज कहते हुए, सिर को झुकाने ही वाले थे कि उनकी नजर फल वाली पर गयी, जिसने उन्हें देखकर न जाने कंठ के किस भाग से आवाज़ निकाली—"संतरा, केला पाईजे साब ?"[1]

रशीद भाई की वह मुस्कान, जिसमें न जाने स्वागत की कितनी चीनी और खुशामद का कितना मसका[1] मिला था, निमिष-भर में उनके ओंठों से विलुप्त हो गई। एकदम कठोर होकर गेलरी में से रसोईघर की ओर देखते हुए, उन्होंने कर्कश स्वर में नौकर को आवाज़

1. संगतरा, केला चाहिए सरकार !

दी, "छोकरा, मेम साहब से बोलो, फल-वल माँगता हो, तो थोड़ा ले लें।" और दरवाज़ा बन्द करके, पूर्ववत् कुरसी में जा धँसे।

डायरेक्टर कादिर से उनकी भेंट मिस शमीम के जन्म-दिवस के उपलक्ष में दी जाने वाली एक पार्टी में हुई थी। डायरेक्टर कादिर 'रत्न लिमिटेड' के सफल निर्देशक थे। उन्होंने जीवन का आरम्भ तो प्रोफ़ेसरी से किया था, पर उन्हें सफलता फ़िल्म लाइन में मिली थी। चार हिट फ़िल्में उनके क्रेडिट पर थी, और उनकी माँग हर जगह थी। पिछले वर्ष अचानक यक्ष्मा से पीड़ित होकर वे मिराज के सेनेटोरियम में चले गये थे। अब कुछ स्वस्थ होकर लौटे थे तो उनके सामने एक बहुत बड़ा प्रोग्राम था, बीमारी-ही-बीमारी में वे तीन फ़िल्मों की कहानियाँ और सिनारियो लिख लाए थे और आते ही 'बम्बई टाकीज़' से उनका कन्ट्रैक्ट भी हो गया था। पहली भेंट में रशीद भाई ने उनको पहली फ़िल्मों की विवेचनात्मक-प्रशंसा करके उन पर इतना प्रभाव डाला कि वह अपनी पत्नी-सहित उनके यहाँ चाय पर आने को तैयार हो गए थे। डायरेक्टर कादिर की स्वीकृति पर रशीद भाई इतने प्रसन्न हुए थे कि उल्लास और आवेग के मारे उन्हें उस रात नींद न आई थी। बार-बार वे अपनी पत्नी को चाय के सिलसिले में आदेश देते रहे थे।

"अगर वे न आये, तो···" वहीं कुरसी पर बैठे-बैठे सहसा रशीद भाई के मन में खयाल आया, और उनका दिल धक् से रह गया। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। रशीद भाई उठे। सम्भावित निराशा ने उनके ओंठों से मुस्कान छीन ली थी, पर अब भी उत्सुकता वहाँ बनी हुई थी। दरवाज़ा खोला, तो देखा, सामने डायरेक्टर कादिर और उनकी बेगम खड़ी हैं। रशीद भाई सहसा घबरा गए। सिर को झुकाकर, 'आदाब अर्ज़' करना भूल गए। हाथों को मलते और दाँत निपोरते हुए, हिंहिं-हिंहि करते 'आइए, आइए' कहते, वे उन्हें बालकनी में ले आए और कुरसियों पर प्रतिष्ठित कर दिया। फिर वे अन्दर गये और अपनी बेगम को ले आए और एक-दूसरे से परिचय कराया। रशीद

१. मक्खन

एक कमरा चाहिए।"

"एक कमरे से ज्यादा न भी हो," डायरेक्टर कादिर ने अपने गंजे होते हुए सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "पर सुकून का अहसास तो चाहिए। वहाँ तो लगता है, जैसे आठों पहर मछली-मंडी में बैठे हैं!"

"हा-हा, ही-ही, हो-हो बारहों घंटे मची रहती है।" बेगम कादिर ने रद्दा जमाया, "शमीम ने तो यहाँ बम्बई आकर वह रंग जमाया है, कि सारा-का-सारा बम्बई उसका दीवाना दिखाई देता है। नाच-गाना, पार्टियाँ, फ्लैश और रमी ड्राइवें!—किसी पल भी तो चैन नहीं! इन्हें काम भी करना हुआ। उसका क्या, सेट पर गयी और चार नफ्ज़ ग़लत-सलत बोल आई। मुसीबत तो इनकी है, जिन्हें कहानी, सिनारियो, शॉट, डायलॉग, कैमरे और साउन्ड तक का खयाल रखना पड़ता है। इन सब बातों के लिए कुछ तो सोच दरकार है। और सोचने लायक शान्ति वहाँ पल-भर को भी मुयस्सर नहीं।"

डायरेक्टर कादिर चुप रहे। केवल उनकी आकृति पर विवशता की रेखाएँ और भी गहरी हो गईं। उस समय रशीद भाई के जी में आया कि क्या न कर दें, कि सम्भव हो तो इतना फूलें, इतना फूलें, कि एक मकान बन जाएँ जिसमें कादिर साहब अपने कुटुम्ब समेत आ जाएँ और उनकी परेशानी दूर हो जाए। "मेरे पास तो यही अढ़ाई कमरे हैं," वे बोले। "अगर इस बारजे को कमरा कहा जाए, नहीं तो मैं आप से यही कहता कि आप यहीं चले आएँ।"

"आपकी इस मेहरबानी का शुक्रिया!" मिसेज़ कादिर मुस्करा-कर बोलीं, "बात जगह की नहीं, बात सुकून-इतमीनान की है। आदमी अच्छे हों, तमीज़ वाले हों, तो कमरा छोड़, कोठरी में गुज़ारा किया जा सकता है। पर इसका क्या किया जाए कि ऊँट की कोई भी कल सीधी नहीं! (मिस शमीम लम्बी, ढीली-ढाली युवती थी। ऊँट से उसकी उपमा देने पर श्रीमती कादिर मुस्कराईं।) यों तो कहने को जनाब ने [illegible]-टेबल सजा रखा है, पर टेबिल-मैनर्ज़ की

अलिफ़-बे¹ तक भी इल्म नहीं। उनसे पढ़वाती हैं, तो मालूम होता है, जैसे अभी कॉलेज से डिग्री लेकर निकली है, पर खाने की मेज़ पर देहातनों को भी मात करती है। पानी पीने और खाने समय वह आवाज़ करती है, कि तौबा की पनाह। [illegible] हाथ और मुँह खराब कर लेती है। और फिर जाने कौन-कौन से [illegible], [illegible] नाते और नौकरों-चाकरों के साथ भी मेज़ पर आ बैठते हैं, और इस तरह खाते हैं कि [illegible] होने लगती है। कभी-कभी तो यह शक गुज़रता है कि जी चाहता है दीवार से सिर फोड़ लें।"

इसी बेगम रशीद के पीछे-पीछे नौकर चाय और नाश्ते का सामान लेकर आया और बेगम रशीद अपनी सहज-सरल मुस्कान के साथ अतिथियों को चाय पिलाने लगी। रशीद भाई ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए, अपनी बात छेड़ी कि स्वयं उन्हें मकान की कैसी दिक्कत थी, किस तरह जब बम्बई में जहाज़ फटा और जापानी आक्रमण के भय से लोग भागने लगे, तो समुद्र के किनारे यह सुन्दर फ्लैट उन्हें मिल गया। फ्लैट की बात करते-करते, उन्होंने फ़िल्म-सम्बन्धी अपने अनुभवों की बात चला दी और बताया कि उन्होंने किस-किस फ़िल्म में काम किया, किस-किसकी कहानी, संवाद तथा गीत लिखे। बेगम क़ादिर इस विषय को दिलचस्प न पाकर, एक प्याली चाय पीने के बाद, बेगम रशीद के साथ उनका फ्लैट देखने चली गईं। एकांत को उपयुक्त समझ, डायरेक्टर क़ादिर की प्रतिभा बखान करते हुए रशीद भाई ने अपना मन्तव्य प्रकट किया कि यदि डायरेक्टर क़ादिर उन्हें अपने साथ काम करने का अवसर दें, तो उनका फ़िल्मी जीवन सफल हो जाए, आदि ''आदि।

डायरेक्टर क़ादिर बड़ी गम्भीरता से, एक अपंग-सी मुस्कान ओंठों पर लिये, रशीद भाई की बातें सुनते रहे। और अन्त में उन्होंने "क्यों नहीं, क्यों नहीं, मैं ज़रूर आपकी मदद करूँगा, आप कोई कहानी लिखकर मुझे दिखाइएगा"—जैसा अनिश्चित-सा वादा किया और

१. अलिफ़, बे, जीम, दाल (हिन्दी में क, ख, ग)

अपनी बेगम को आवाज़ दी कि देर हो रही है, प्रोड्यूसर वाडीलाल मिलने के लिए आने वाले हैं, जल्द चलना चाहिए।

बेगम कादिर वापस बालकनी में आयी, तो उनका मुख खिला पड़ता था। "वाह! आपका फ्लैट तो बड़ा सुन्दर और खुला है!" उन्होंने रशीद भाई से कहा, "जी खुश हो गया देखकर!"

रशीद भाई ने दोनों हाथ फैलाकर एक्टरों के-से अन्दाज़ में कहा, "कहिए क्या इरशाद है?"

निमिष-भर के लिए बेगम कादिर चुप उनकी ओर देखती रही, फिर उनकी बात का मतलब समझकर हँसी। "यह सब आपकी मेहरबानी है," उन्होंने कहा, "मैं तो सिर्फ फ्लैट की तारीफ कर रही थी।"

"नहीं, आपको पसन्द हो, तो आ जाइए। हम तो आपके साथ बालकनी में रहकर भी खुश होंगे। और यहाँ आपको और तकलीफ चाहे हो, दिमागी परेशानी नहीं होगी। सच!"

बेगम कादिर, उत्तर में केवल कृतज्ञता से हँसी। सीढ़ियाँ उतरते-उतरते उन्होंने अपने पति से कहा कि अपनी नई पिक्चर में रशीद भाई से डायलॉग क्यों नहीं लिखवाते। और जब डायरेक्टर कादिर टैक्सी में सवार हुए, तो हाथ मिलाते हुए, उन्होंने रशीद भाई से वादा कर दिया कि अभी जब वे प्रोड्यूसर वाडीलाल से मिलेंगे, तो डायलॉग के लिए रशीद भाई का नाम तजवीज़ करेंगे।

रशीद भाई जब उन्हें छोड़कर वापस आये, तो एक-एक के बदले दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियाँ चढ़ गए। जाते ही, उन्होंने उल्लास के मारे अपनी बेगम को आलिंगन में भींच लिया और फिर यह खबर देते हुए कि खुदा ने चाहा तो डायरेक्टर कादिर की आगामी पिक्चर के डायलॉग वे ही लिखेंगे, उन्होंने अपनी कार्यपटुता की दाद चाही।

"तुम सोच ही नहीं सकती, किस सफाई से मैंने डायरेक्टर कादिर से काम का वादा ले लिया। फिल्मी दुनिया में सिर्फ क़ाबलियत को कोई नहीं पूछता। यह राज़ मैंने बरसों की ठोकरें खाने के बाद जाना है। [illegible] ...ाय चतुराई और चापलूसी की ज़रूरत है।

रशीद भाई तो ऐसे ही थे जो काबिल नहीं, पर होशियार और चतुर थे। अब सुनी कहो, अगर मैंने बेगम कादिर को यहाँ आकर रहने की दावत न दी होती, तो मुझे क्या यह काम मिल जाता ? कभी नहीं ! लेकिन मैं जानता हूँ, कहाँ, किस तरह, क्या कहना चाहिए ! वे लोग अपना इतना अच्छा फ्लैट छोड़कर यहाँ क्या आवेंगे, पर मेरी इस दावत ने उन पर असर तो किया और उसका फल मुझे अभी मिल गया……

और रशीद भाई अपनी बेगम की अपनी इस कार्यपटुता और चातुर्य पर विस्मित होकर, अपने जोश में अपनी कम्पनी के प्रोड्यूसर से मिलने चल दिए कि उन पर इस बात का रौब ग़ालिब करके अपनी पिक्चर के लिए उनसे अच्छा कन्ट्रैक्ट प्राप्त कर लें।

रात को रशीद भाई लौटे तो हल्की-सी पिये हुए थे। अपने प्रोड्यूसर से उनकी भेंट न हुई, तो उन्होंने अपने स्टंट फ़िल्म के हीरो शहबाज को जा पकड़ा था। उन्हें कुछ साधारण से अधिक प्रसन्न देखकर, जब शाहबाज़ ने कारण जानना चाहा, तो उससे इस बात की शपथ लेकर कि वह किसी को न बताएगा, उन्होंने उसके कान में कहा कि वे डायरेक्टर क़ादिर की आगामी पिक्चर के लिए डायलॉग लिखने वाले हैं। और बिना शहबाज के कहे, उन्होंने उसे वादा दे दिया, कि वे उसे अपनी पिक्चर में अव्वल तो हीरो, नहीं तो सेकिंड-हीरो अथवा विलेन का रोल अवश्य दिलाने की कोशिश करेंगे। इसी खुशी में शहबाज़ उन्हें दादर-बार में ले गया, और स्कॉच के दो-दो 'छोटे पेग' दोनों ने चढ़ाए। शहबाज़ का हाथ तंग था, नहीं तो रशीद भाई मित्रों के सहारे घर पहुँचते। लेकिन उसने रशीद भाई को एक सप्ताह बाद दादर-बार ही में दावत दी थी और विश्वास दिलाया था कि इस बीच में वह अव्वल तो स्कॉच, नहीं तो ड्राई-जिन की एक बोतल का अवश्य ही प्रबन्ध कर लेगा।

समुद्र में ज्वार आ रहा था। लहरें बड़ी … और तट

से लौटने वाली लहरों से टकराकर, दोनों ओर दूर तक झाग की दीवार-सी बनाती चली जाती थी। आकाश पर तारों में चाँद की एक फाँक अपने प्रकाश से समुद्र की विशाल छाती पर आकाश-गंगा-सा ज्योति-पथ बना रही थी। रशीद भाई के मस्तक में हल्का-हल्का सरूर छा रहा था। उनका जी चाहता था कि उस धीमे-धीमे उजियाले में सागर-तट पर घूमें; भीगे, रेतीले किनारे पर खड़े दृष्टि-सीमा तक समुद्र को आलोकित करते उस ज्योति-पथ को निहारें, दादर के पानी को समुद्र में गिराने वाले ढके हुए नाले की पक्की गोलाई पर जा बैठें और नीचे बढ़े आते समुद्र की लहरों के ऊपर पाँव पसार लें—यहां तक कि नाले की गोलाई से टकराने वाली लहरों के छींटे कभी-कभी उनके पैरों पर आ पड़ें। तभी सागर-तट से ठंडी हवा का एक झोंका आया। रशीद भाई को अपने नरम-गरम बिस्तर की याद हो आई। बिस्तर के साथ ही उन्हें अपनी बेगम के नरम-गरम गदराये शरीर का खयाल आया और समुद्र-तट पर घूमने का मोह छोड़, वे एक-एक के बदले दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे। और उन्होंने एक उँगली बढ़ाकर शरारत से लम्बी घंटी बजाई।

उनका खयाल था कि फर्श पर लटकते हुए घाघरे-जैसे गुजराती ड्रेस को फरफराती और यौवन के ज्वार को दुपट्टे की तहों से रोकने का विफल प्रयास करती, झीकती पर मुस्कराती, उनकी पत्नी आकर किवाड़ खोलेंगी और मीठे, रोष-भरे स्वर में कहेंगी, 'बस करो, बस करो! क्यों बच्चों की तरह घंटी बजाए जा रहे हो? बहरी तो नहीं हूँ!' लेकिन रशीद भाई भौचक्के-से एक कदम पीछे हट गए, जब उनकी पत्नी के बदले बेगम कादिर ने दरवाजा खोला, और नंगी तलवार-की-सी दृष्टि से उन्हें चीरते हुए-से, मृदुल होने का असफल प्रयास-सा करते हुए, कर्कश स्वर में कहा, "ओह, आप! मैं तो समझी, कोई आवारा छोकरा परेशान कर रहा है। क्या रोज इसी तरह घंटी बजाते हैं आप?" और फिर स्वर को मृदुल बनाकर, रशीद भाई को अन्दर आने का मार्ग देते और हँसते हुए, उन्होंने

कहा, "हम तो आ गए । स्टूडियो में प्रोड्यूसर गार्डीनाल ने आपके बारे में बात करते हुए, घर पहुँचे, तो एक बेगाना शोर मचा हुआ था। सारे पड़ोसियों में शोर लिए रशीद को उसकी सालगिरह पर ('हैप्पी बर्थ डे टू यू' पर गर्दन हिलाते हुए) मुबारकबाद देने आए हुए थे । वे बड़े बीमार । और फिर मेरा तो हलक में दम घुटने लगता है । मैंने ऐसी भीगाई, उनमें जल्दी खाना खाया और यहाँ चली आई । आपको तकलीफ तो होगी लेकिन…"

लेकिन इसी बीच में रशीद भाई का गुस्सा ठंडा हो चुका था। सोचने की शक्ति वापस आ गई थी, पीछे हटा हुआ कदम आगे आ गया था और कल्पना की उड़ती हुई पतंग ने यथार्थ का झटका खाकर धरती को छू लिया था। खिसियानी-सी हँसी हँसते हुए उन्होंने कहा, "छि-छि, तकलीफ कैसी ? मैंने तो सुबह ही कहा था कि आपका घर है । छि-छि, आप ही का घर है । मुनिरा (रशीद साहब की पत्नी) कहाँ है ? खाना-वाना खाया आप लोगों ने ?"

"हम तो देर तक आप लोगों की राह देखते रहे । लेकिन (यहाँ बेगम क़ादिर ने बड़े धीमे स्वर में कहा) आप जानते हैं, वे बीमार आदमी हैं, उन्हें समय पर खाना और सोना चाहिए । हमने तो खा लिया । बेगम रशीद किचन में होंगी ।" और रशीद भाई का मुँह किचन की ओर मोड़कर, उन्होंने कहा, "अभी हम इसी कमरे में जम गए हैं । आप खाना खाइए, मैं जरा उनके सोने का इन्तज़ाम करूँ फिक्र न कीजिए, मैं तकल्लुफ़ में यकीन नहीं रखती । मैंने जरूरत की सब चीजें ले ली हैं, ले भी लूँगी और आपको तकलीफ़ देने से हिचकिचाऊँगी भी नहीं ।" और यह कहकर, वे अन्दर कमरे में चली गई

एक ही सप्ताह में रशीद भाई को मालूम हो गया कि बेगम क़ादिर उन लोगों में से कदापि नहीं, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं । वे जो कहती हैं, अक्षरशः वही करती हैं । उन सात दिनों में उन्होंने ज़रा भी तकल्लुफ़ से काम नहीं लिया और रशीद भाई

भौर उनकी बेगम को कष्ट देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाईं। दोनों कमरों में से जो बड़ा था, वह तो उन्होंने भाते ही रशीद भाई की अनुपस्थिति में सँभाल लिया था। रशीद भाई का सामान और बिस्तर आदि उन्होंने अपनी देख-रेख मे मध्य के कमरे में, जो बेगम रशीद शृङ्गार-गृह था, सजा दिया था। उस कमरे को इस तरह सजाने में कि उसमें दो पलग भी आ जाएँ, और जनाना और मरदाना ड्रेसिंग-टेबल भी और वह बुरा भी न लगे, उन्होंने बेगम रशीद की पूरी-पूरी सहायता की थी। रशीद भाई की प्रतीक्षा किये बिना, बड़ी बेतकल्लुफ़ी से खाना पकवाया था। कितने अंडों का आमलेट और हलवा रहे और गोश्त के साथ कौनसी तरकारी और सालन रहे, यह सब बनाने में किसी संकोच से काम न लिया था। बल्कि अगले दिन से उनके पति को कितनी बार दूध, अंडे, सूप चाहिए, इसका 'मीनू' भी बना दिया था (फेफड़े के कष्ट में खाने ही का महत्व जो है, इसलिए) नौकर को आदेश देकर अपने कमरे ही मे खाना मँगाया, खाया और पति के सोने की व्यवस्था करने में निमग्न हो गई थीं।

यहाँ तक तो ख़ैर रशीद भाई को कुछ अधिक कष्ट नहीं हुआ। पहले झटके के बाद जब वे सँभले, तो डायरेक्टर क़ादिर को अपने घर में पाकर और यह जानकर कि उन्होंने न केवल अपने प्रिय डायरेक्टर को भारी मानसिक कष्ट से छुटकारा दिलाया है, बल्कि स्वयं भी वह अवसर पाया है, जिसकी सुखद कल्पना वर्षों से वे करते आ रहे थे, उन्हें गौरव और गर्व की अनुभूति हुई और उन्होंने रसोईघर में घुटनों में सिर दिये बैठी अपनी बेगम को बीसियों युक्तियाँ देकर समझा दिया कि डायरेक्टर कादिर का उनके घर में आना उनके लिए हर तरह से लाभदायक है। लेकिन यही से वह मानसिक कष्ट, जिससे उन्होंने डायरेक्टर क़ादिर की जान बचाई थी, उनकी जान पर लागू हो गया।

वे रात मे अपनी पत्नी के साथ लेटे हुए थे। समझते थे कि उन्होंने अपनी कार्यपटुता से डायरेक्टर क़ादिर को फाँसा है, पर अब उन्हें मालूम हुआ कि बेगम क़ादिर ने अपनी कार्यपटुता से उनको

पेश किया है । यह कहकर साथ ही, अपनी मुसीबत पर वे एक ठहाका मारकर हँस दिए । तभी अन्दर से कमरे में टिक-टिक हुई । उचक-कर बेगम रशीद सामने पलंग पर जा बैठीं और बोलीं, "आइए !"

अपने होंठों पर उँगली रखे, बेगम कादिर दबे पाँव अन्दर दाखिल हुईं । सरगोशी के स्वर में उन्होंने कहा, "खुदा के लिए धीरे हँसिए । अभी बड़ी मुश्किल से सिर पर तेल मलकर मैंने उन्हें सुलाया है !" और किवाड़ धीरे से बन्द करके वे वापस चली गईं ।

इसके बाद बेगम रशीद को फिर अपने पति की चारपाई पर आने का साहस न हुआ ।

दूसरे दिन बेगम क़ादिर ने, बड़ी बेतकल्लुफ़ी से रशीद भाई के कमरे से एक चारपाई उठवाकर बालकनी में डलवा दी और वहाँ कादिर साहब की मेज़ लगवा दी (क्योंकि काम के लिए सोने का कमरा उपयुक्त न था, फिर छोटी-सी बच्ची भी उनके थी, जो रशीद भाई के लड़के के साथ हिल-मिल गई थी और शोर में काम न हो सकता था ।) "रात फिर चारपाई यहीं कर लेंगे," उन्होंने रशीद भाई को समझा दिया, "अभी आप लोग इस मेज पर बैठकर काम करें ।" यह कह वे अपने कमरे में चली गईं और उसे ठीक करने में लगी रहीं ।

रशीद भाई ने उसी मेज पर बैठकर, डायरेक्टर क़ादिर के साथ चन्द मिनटों के लिए संवादों के सिलसिले में बातचीत की । बस, यही तसल्ली उन्हें रही । शेष सारा दिन तरह-तरह के लोग डायरेक्टर क़ादिर से मिलने को आते रहे । रशीद भाई बालकनी में उठ आए, और वहीं बैठे अपने मित्रों से बातें करते रहे और बेगम रशीद दिन-भर किचन में बैठी रहीं । यह कहने की ज़रूरत नहीं, कि कादिर साहब से जो लोग मिलने आते रहे, उन्होंने दूसरी चारपाई से सोफ़े का काम लिय—सुबह बेगम रशीद ने जो धुला-धुलाया पलंग-पोश बिछाया था वह शाम होते-होते बीसियों सलवटों से भर गया ।

फ्लैट में दो बाथरूम थे, जिनमें से एक में स्नानादि होता था, और दूसरे में घाटन आकर बरतन आदि मलती थी । इस दूसरे बाथ-

रूम की, पूर्ण रूप से निस्संकोच होकर, बेगम कादिर ने तीसरे दिन संभाल लिया और घाटन से कह दिया कि वह बरतन रसोई ही में मले।

चौथे दिन रशीद भाई ने सोच-साचकर यह तरकीब निकाली कि दूसरा पलग भी बालकनी में लाकर सजा दिया जाए और बालकनी का सामान मध्य के कमरे में लगाकर, उसे साझा ड्राइंगरूम बना दिया जाए। बेगम क़ादिर ने इस सूझ के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परिणाम इसका यह हुआ कि वह कमरा भी उनके हाथ से निकल गया और बेगम रशीद पूर्ववत् दिन का अधिक समय रसोई में बन्द रहीं, क्योंकि जब कादिर साहब अपने मिलने वालों से बात कर रहे हों तो रशीद भाई का अपने मिलने वालों से बात करना तो दूर रहा, उन्हें वहाँ बिठाना अथवा स्वयं बैठना भी असम्भव था। सो रशीद भाई को पूर्ववत् बालकनी में बैठकर काम करना और मुलाक़ातियों से मिलना पड़ा और बेगम रशीद ने दिन रसोईघर में काटा।

पाँचवें दिन शृङ्गार की मेज़ भी बालकनी में आ गई। इस तरह बालकनी उनका सोने, बैठने और शृङ्गार करने का स्थान बन गई और डायरेक्टर कादिर से उन्होंने जो कहा था कि 'यदि आप आयें, तो हम बालकनी में रहकर भी सुख पायेंगे,' सो वह सुख उन्हें अधिक-से-अधिक मात्रा में पहुँचाने के लिए बेगम क़ादिर ने किसी प्रकार की कंजूसी से काम नहीं लिया।

छठे दिन उन्होंने किसी प्रकार की हिचकिचाहट के बिना स्टोर से रशीद भाई का सामान निकालकर, वहाँ अपना रसोईघर बना लिया। "इनको तो तुम जानती हो," बेगम रशीद से उन्होंने कहा, "फेफड़े की तकलीफ है। आज 'निगेटिव' हो तो क्या, कल 'पाज़िटिव' हो सकते हैं। मैं तो अपने बरतन भी अलग रखती हूँ। तुम्हारे फूल-सा बच्चा है। सो भाई, रसोई तो मैं अलग पकाऊँगी।"

इस तरह स्टोर का जो सामान गैलरी में आ पड़ा, उसे सजाने और गैलरी में अस्थायी स्टोर बनाने में उन्होंने बेगम रशीद की पूरी-पूरी सहायता की और निस्संकोच अमूल्य परामर्श दिया।

इसमें भी अचरज नहीं कि स्कॉलर बनते ही उन्होंने रशीद भाई के बावर्ची और वाहन पर अपना अधिकार जमा लिया और नये नौकर के आने तक बेगम रशीद को अपने हाथ से खाना पकाने के लिए विवश होना पड़ा।

तीसरे दिन जब शहनाज़ के निमन्त्रण पर रशीद भाई बादर-बार में पहुँचे, तो शहनाज़ ने देखा, चार दिन पहले उनके मुख पर जो प्रसन्नता थी, उसका कोई चिह्न भी वहाँ नहीं। दाढ़ी उनकी बढ़ी थी और कपड़े भी नापाक थे। चेहरा भी, जो मांस के बाहुल्य के बावजूद भरा, गोरा और चमचमाता लगता था, लटकता-सा दिखाई दिया

शहनाज़ को यह तो मालूम ही हो गया था कि रशीद भाई डायरेक्टर कादिर की नयी पिक्चर के संवाद लिख रहे हैं, इसलिए वह स्कॉच की एक पूरी बोतल लिये उनकी प्रतीक्षा कर रहा था कि आयें तो पूछे कि उन्होंने उसके लिए भी कुछ किया है या नहीं, पर रशीद भाई का रूप देखकर वह चुप ही रहा। बैरे को बुलाकर उसने मटन-चाप और कबाब के लिए ऑर्डर दिया और गिलासों में पेग उँडेले। सोडे की बोतलों के कार्क उड़ा, उसने गिलासों में सोडा डाला और एक गिलास रशीद भाई की ओर बढ़ाया।

रशीद भाई इस बीच में बराबर कुहनियाँ मेज पर टेके, हथेलियों पर सिर रखे, सामने दीवार पर भागती हुई हिरनी का पीछा करते रहे, जो न जाने कुलाँच भर रही थी अथवा अँगड़ाई ले रही थी, क्योंकि कुलाँच भरने में उसकी अगली और पिछली टाँगों में उतना ही अन्तर था, जितना अँगड़ाई के समय होता। चित्रकार ने हिरनी की अँगड़ाई में कदाचित अपनी ही प्रेयसी की अँगड़ाई को देखा था। कौन जाने? साधारण आदमी के मन की बात भी नहीं जानी जा सकती, फिर यह तो कलाकार के मन की बात ठहरी। जहाँ तक रशीद भाई का सम्बन्ध था, उनका मन अँगड़ाई की बिलकुल उल्टी स्थिति में था। ऐसा सिकुड़ गया था कि शायद कुछ सोच ही न रहा था। उनकी आँखें इस प्रकार हिरनी पर टिकी थीं, जैसे दृष्टि के—

से उसे सचमुच कुलांच भरने पर विवश कर देंगी। कुलांच न भरेगी, तो उसमें बड़े-बड़े दो छेद कर देंगी।

शहबाज ने कुछ क्षण इस बात की प्रतीक्षा की कि रशीद भाई की निगाहें आप-से-आप गिलास में उमड़े हुए उस उफान को देख लें, पर जब झाग उठकर बैठने लगे और रशीद भाई की अन्यमनस्क दृष्टि हिरनी पर से न हटी तो उसने कहा, "क्या बात है? उठाइए न गिलास! देखिए, शीशे में उतरी परी आपके ओंठों से लगने को बेचैन है!" और वह एक खोखली, बनावटी हँसी हँसा।

"हटाओ, यार! आज मन नहीं। पी जाओ यह भी तुम्हीं! मैं तो चला आया कि तुम फोकट में मेरी राह न देखो।" और उन्होंने गिलास को शहबाज के गिलास के साथ रख दिया।

"बात क्या है? डायरेक्टर कादिर से मामला नहीं पटा क्या?"

रशीद भाई पहली बार कुछ मुस्कराये। "पटा क्या, चक्की का पाट बनकर गले में पड़ गया। सोचता हूँ, किस तरह उससे नजात हासिल करूँ।"

"क्या मतलब आपका?"

उत्तर रशीद भाई ने अपनी विपदा की सारी कहानी सविस्तार कह सुनाई।

बैरा मटन-चाप और कबाब रख गया।

शराब गिलास में पड़ी हो, गरम-गरम मटन-चाप की प्लेट दावत दे रही हो, शहबाज को इस सुख के सामने सभी दुख अकिंचन दिखाई देते थे। उसने कहा, "हटाइए, आप भी क्या जरा-जरा-सी बात को मन में जगह देते हैं! इतनी बड़ी आपकी ख्वाहिश पूरी हो गई। उठाइए, इस खुशी में दो-एक पैग उड़ जाएँ।"

लेकिन रशीद भाई के ओंठों पर मुस्कान की जो रेखा उदित हुई, उसमें बड़ी वेदना थी।

"तुम्हें जरा-सी बात लगती है! यहाँ तो मालूम होता है कि जन्नत में बैठे-बैठे जहन्नुम में जा पड़े। अगर डायरेक्टर कादिर या मिस शमीम

गी और दो महीने मकान न मिला तो अपना तो बंटाढार हो जाएगा।"

"अजी आप गिलास उठाइए। ज़्यादा तकलीफ़ हो तो मेरे यहाँ चले आइएगा।" और उसने स्वयं गिलास उठा लिया।

रशीद भाई ने बड़े अनमने भाव से गिलास उठाते हुए कहा, "लेकिन तुम्हारे पास तो सिंगिल-फ़्लैट है। तुम कहाँ जाओगे?"

गिलास को रशीद भाई के गिलास से टकराते और एक ही घूँट में ख़त्म करते हुए शहबाज़ ने कहा, "हम फक्कड़ों का क्या है? बाहर सीढ़ी पर बिस्तर जमा लेंगे।"

दूसरे दिन ग्यारह-बारह के लगभग जब शहबाज़ ने अपनी खुमार-भरी आँखें खोलीं, तो उसने देखा कि कमरा सामान से अटा पड़ा है, और वही जगह खाली है जिसमें कि वह सोया हुआ है। उसने दो-एक बार आँखों को झपकाया कि सपना तो नहीं देख रहा। तभी दरवाज़े पर रशीद भाई नमूदार हुए। बोले, "तुम भी, यार, खूब पीते हो, और खूब सोते हो! उठो हाथ-मुँह धोओ, और खाना खा लो। फिर सामान लगाने में हमें मदद दो। तुम्हारी भाभी किचन में खाना पका रही है। तुम्हारा नौकर बड़ा अच्छा है। वह न होता तो इतना सामान इस तीसरे महाल[1] पर कभी न चढ़ता।" और वे रह-रहकर हँसने लगे।

रात को चौथे महाल पर रहने वाला क्लर्क जब ज़रा देर में अपने घर आया, तो सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने देखा कि तीसरी महाल का नौकर ही सीढ़ियों पर नहीं सो रहा, बल्कि उसका साहब भी बिस्तर बिछाए लेटा हुआ है और और मुटर-मुटर छत की ओर तक रहा है।

चारा काटने की मशीन

रेल की लाइनों के पार, इस्लामाबाद की नयी आबादी के मुसलमान, जब सामान का मोह छोड़, जान का मोह लेकर भागने लगे तो हमारे पड़ोसी सरदार लहनासिंह की पत्नी चेती।

"तुम हाथ पर हाथ धरे नामर्दों की तरह बैठे रहोगे," सरदारनी ने कहा, "और लोग एक से बढ कर एकघर पर कब्जा कर लेंगे।"

सरदार लहनासिंह और चाहे जो सुन लें, परन्तु औरत-जात के मुँह से 'नामर्द' सुनना उन्हें कभी गवारा न था। इसलिए उन्होंने अपनी ढीली पगडी को उतारकर फिर से जूड़े पर लपेटा, धरती पर लटकते हुए तहमद का किनारा कमर में खोसा; कृपाण को म्यान से निकालकर धार का निरीक्षण करके फिर म्यान में रखा और इस्लामाबाद के किसी बढिया'नये'मकान पर अधिकार जमाने के विचार से चल पडे।

वे अहाते ही में थे कि सरदारनी ने भागकर एक बडा-सा ताला उनके हाथ में दे दिया। "मकान मिल गया तो उस पर अपना कब्जा कैसे जमाओगे," उसने कहा, "अपना ताला तो लेते जाओ!"

सरदार लहनासिंह ने एक हाथ मे ताला लिया, दूसरा कृपाण पर रखा और लाइनें पार कर इस्लामाबाद की ओर बढे।

खालसा कॉलिज रोड अमृतसर पर पुतलीघर के समीप हमारी कोठी थी। इसके बराबर एक खुला अहाता था। वहीं सरदार लहनासिंह चारा काटने की मशीनें बेचते थे। अहाते के कोने में दो-तीन अँधेरी, सीली कोठरियाँ थीं। मकान की किल्लत के कारण सरदार साहब वहीं रहते थे। यद्यपि काम उन्होंने डेढ-दो हज़ार रुपये से आरम्भ किया था, पर लड़ाई के दिनों में (किसानों के पास रुपये का ... होने से) उनका काम खूब चमका। रुपया आया तो सामान

भी आशा और सुख-सुविधा की आकांक्षा भी जगी। यद्यपि आरम्भ में उस अहाते और उन कोठरियों को पाकर पति-पत्नी बड़े प्रसन्न हुए थे, परन्तु अब उनकी पत्नी, जो 'सरदारनी' कहलाने लगी थीं, उन कोठरियों तथा उनकी सील और अँधेरे को अतीव उपेक्षा से देखने लगी थीं। ग्राहकों को मशीनों की कुतरी दिखाने के लिए दिन-भर उनमें चारा कटता रहता था। अहाते-भर में मशीनों की क़तारें लगी थीं। जो भावना रहित हो अपने तीखे छुरों से चारे के पूले काटती रहती थीं। सरदारनी के कानों में उनकी कर्कश ध्वनि हथौड़ों की अनवरत चोटों-सी लगने लगी। जहाँ-तहाँ पड़े हुए चरी के पूले और चारे के ढेर अब उसकी आँखों को अखरने लगे। सरदार लहनासिंह तो—यद्यपि उनकी पगड़ी और तहमद रेशमी हो गए थे और उनके गले में लकीरदार गबरून की क़मीज का स्थान घुटनों तक लम्बी बोस्की की कमीज़ ने ले लिया था—वही पुराने लहनासिंह थे। उन्हें न कोठरियों की तंगी अखरती थी और न तारीकी, न मशीनों की कर्कशता, न चारे के ढेरों की निरीहता, बल्कि वे तो उस सारे वातावरण में बड़े मस्त रहते थे। वे उन सरदारों में से थे जिनके सम्बन्ध में एक सिख लेखक ने लिखा है कि जिधर से पलट कर देख लो, सिख दिखाई देंगे। कुछ पतले-दुबले हों, यह बात नहीं। अच्छे-खासे हृष्ट-पुष्ट आदमी थे और उनकी मर्दुमी के परिणामस्वरूप पाँच बच्चे जोंकों की भाँति सरदारनी से चिपटे रहते थे। परन्तु यह सरदारनी का ढंग था। उसे यदि सरदार लहनासिंह से कोई ऐसा काम कराना होता, जिसमें कुछ बुद्धि की आवश्यकता हो, तो वह उन्हें 'बुद्धू' कहकर उकसाती और यदि ऐसा काम कराना होता, जिसमें कुछ बहादुरी की ज़रूरत होती, उन्हें 'नामर्द' का ताना देती। उसका यह ढंग था तो खासा अशिष्ट, पर रुपया आने और अच्छे कपड़े पहनने ही से तो अशिष्ट आदमी शिष्ट नहीं हो जाता। फिर सरदारनी को नये धन का मान चाहे हो, शिष्टता का मान कभी न था।

सरदार लहनासिंह इस्लामाबाद पहुँचे तो वहाँ मार-धाड़ मची

हुई थी। उनकी धारा काटने की मशीनें जिस प्रकार भावनारहित होकर घरों के निरीह पूले काटती थीं, कुछ उसी प्रकार उन दिनों एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयाइयों को काटते थे। सरदार सहनासिंह ने अपनी चमचमाती कृपाण निकाली कि यदि किसी मुसलमान से मुठभेड़ हो तो तत्काल अपनी मर्दुमी का प्रमाण दे दें। परन्तु इधर जीवित मुसलमान का निशान तक न था। हाँ, गलियों में रक्तपात के चिह्न अवश्य थे और दूर से लूट-मार की आवाजें आ रही थीं।

तभी, जब वे सतर्कता से बढ़े जा रहे थे, उनको अपने मित्र गुरदयालसिंह एक मकान का ताला तोड़ते दिखाई दिए। सरदार सहनासिंह ने रुककर प्रश्नपूर्वक दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"मैं तो इस मकान पर कब्जा कर रहा हूँ", सरदार गुरदयालसिंह ने एक उचटती दृष्टि अपने मित्र पर डाली और अपने काम में लगे रहे।

तब सरदार सहनासिंह ने ढीली होती हुई पगड़ी का सिरा निकालकर पेंच कसा और अपने मित्र के 'नये' मकान की ओर देखा। उसे देखकर उन्हें अपने लिए मकान देखने की याद आई और वे तत्काल बढ़े। दो-एक मकान छोड़कर उन्हें सरदार गुरदयालसिंह की अपेक्षा कहीं बड़ा और सुन्दर मकान दिखाई दिया, जिस पर ताला लगा था। आव देखा न ताव, उन्होंने गली से एक बड़ी-सी ईंट उठाई और दो-चार चोटों ही में ताला तोड़ डाला।

यह मकान यद्यपि बहुत बड़ा न था, परन्तु उनकी उन कोठरियों की तुलना में तो स्वर्ग से कम न था। कदाचित् किसी शौकीन क्लर्क का मकान था, क्योंकि एक छोटा-सा रेडियो भी वहाँ था और ग्रामोफोन भी। गहने-कपड़े न थे और ट्रंक खुले पड़े थे। मकानवाला शायद मार-धाड़ से पहले शरणार्थी-कैम्प या पाकिस्तान भाग गया था। जो चीज वह आसानी से ले जा सकता था, ले गया था। फिर भी जरूरत का काफी सामान घर में पड़ा था। यह सब देखकर सरदार सहनासिंह ने उल्टी कलाई मुँह पर रख ज़ोर से बकरा बुलाया। फिर तहमद की कोर को दोनों ओर से कमर में खोंस सामान का निरीक्षण करने लगे।

अपने नये घर पहुँचे। अभी ही में उन्होंने देखा कि सरदार गुरदयालसिंह की गृहिणी और बच्चे तो नये मकान में पहुँच भी गए हैं। तब उन्हें लगा कि उनसे भारी गलती हो गई है। उन्हें भी अपनी गृहिणी को तत्काल ले आना चाहिए। यदि अगला-दूसरा गुरदयाल अपनी गृहिणी को ला सकता है तो वे क्यों नहीं ला सकते?

यह सोचना था कि सारे सामान को उसी प्रकार कोठी में रख, वहीं ताला-सा लगा गया, उन्होंने गुरदयालसिंह से कहा कि भई जरा मकान रखना मैं भी अपनी गृहिणी को ले आऊँ, शाम हो जाएगी।

और उसी टैक्सी पर सरदार सहनासिंह उल्टे पाँव लौटे। घर पहुँचकर उन्होंने अपनी सरदारनी को बच्चों के साथ तत्काल तैयार होने के लिए कहा।

परन्तु एक-डेढ़ घंटे के बाद जब अपने बीवी-बच्चों के साथ सरदार सहनासिंह इस्लामाबाद पहुँचे, तो उनके नये मकान का ताला टूटा पड़ा था। कोठी से उनका सारा सामान गायब था। केवल चारा काटने की मशीन अपने पहरे पर ड्योढ़ी में जमी हुई थी। घबराकर उन्होंने गुरदयालसिंह को आवाज दी परन्तु उनके मकान में कोई और सरदार विराजमान थे। उनसे पता चला कि सरदार गुरदयालसिंह दूसरी गली में एक और बड़े मकान में चले गए हैं। तब सरदार सहनासिंह तत्काल निश्चय कर मकान की ओर बढ़े कि देखें और कौन बस गए हैं।

ड्योढ़ी में उनके प्रवेश करते ही दो लम्बे-तड़ंगे सिपाहियों ने उनका रास्ता रोक लिया, टैक्सी पर सवार उनके बीवी-बच्चों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि यह मकान शरणार्थियों के लिए नहीं। इसमें थानेदार बलवंतसिंह रहते हैं।

थानेदार का नाम सुनकर सरदार सहनासिंह की कृपाण म्यान में चली गई और पगड़ी कुछ और ढीली हो गई।

"हुजूर, इस पर तो मेरा ताला पड़ा था। मेरा सारा सामान…"

"चलो, चलो, बाहर निकलो! अदालत में जाकर दावा करो। दूसरे के सामान को अपना बताते हो!" और उन्होंने सरदार सहनासिंह

हों दुकानों से संकेत किया। तभी नहनासिंह की दृष्टि चारा काटने क
मशीन पर गई और उन्होंने कहा, "देखिए, यह मेरी चारा काटने की
मशीन है, किसी से पूछ लीजिए, मुझे यहाँ सभी जानते हैं।"

पर और कुछ घरों 'नये' मकानों से जो सरदार या लाला बाह
निकले, उनमें एक भी परिचित आकृति नहनासिंह को न दिखाई दी।

"तो क्यों नहीं कहते कि चारा काटने की मशीन चाहिए," उनक
ले जाने वाले एक मित्र ने कहा और वह अपने साथी से बोला, "सुट्ट भ
करतारसिंह, मशीन नूं बाहर। गरीब शरणार्थी हुन। असां इह मशीन
साडी की करनी ऐ।"

और दोनों ने मशीन बाहर फेंक दी।

दो-ढाई घंटे के अनथक खोजने के बाद जब सरदार नहनासिंह, स
भाई जान, वापस अपने ठिकाने को चले, तो उनके बीवी-बच्चे पैदल ज
रहे थे और बैलगाड़ी पर केवल चारा काटने की मशीन लदी थी।

गली का नाम

लाला भगवानदास-सा शान्त, सौम्य और उदासीन व्यक्ति सारे
वसन्त नगर में न था। अपनी क्लर्की के बारह वर्ष लोहारी दरवाज़े
लाहौर की एक निविड़ और अँधेरी गली के एक और भी निविड़ और
अँधेरे मकान में बिताकर उन्होंने इतना धन संचय कर लिया था कि
लाहौर के बाहर दूर-दूर तक मैदानों और वीरानों में बसने वाली नौ
आबादियों में, सस्ती-सी जगह लेकर मकान बनवा सकें।

अपनी गली में सबसे पहला मकान उन्हीं का था। गरमियों में

वे-पनाह लू चलती और बरसात में इतना पानी इकट्ठा हो जाता कि उनका मकान एक छोटा-मोटा द्वीप नज़र आने लगता।

धीरे-धीरे लालाजी के मकान की इकाई मिटने लगी और जहाँ केवल उन्ही का मकान उस विजन-सागर के प्रकाश-स्तम्भ-सा अकेला खड़ा था, वहाँ अब दूसरे मकान भी बन गए और एक गली की-सी सूरत निकल आई। फिर मालिक मकान आये, किरायेदार आये, बीवियाँ, बच्चे और बच्चियाँ आयीं और जहाँ पहले दोपहर और रात की निस्तब्धता, हवा की साँय-साँय और झींगुरों के शोर से और भी घनीभूत हो जाया करती थी, वहाँ अब ग्रामोफोन के रेकार्डों, रेडियो के गानों और हारमोनियम की पीं-पीं से मुखर हो चली! हफ्ते में एक-आध लड़ाई, एक-आध संकीर्तन और एक-आध सभा भी होने लगी। एक आर्य-समाज-मन्दिर, एक गुरुद्वारा, एक खेल-कूद का मैदान और एक अखाड़ा भी बन गया।

लेकिन यह सब सामाजिक अथवा पारिवारिक सजीवता लालाजी की उदासीन निस्पृहता को भंग न कर सकी। पहले यदि वे कभी सुबह-शाम खेल के मैदान में घूम लेते थे, तो उससे भी गए। घर से दफ्तर और दफ्तर से घर—बस, यही तक उनकी सरगरमियाँ सीमित थीं। पड़ोसियों से तो दूर, पति-पत्नी में भी कभी हँसी-मजाक की एक बात न हुई। कभी मुस्कराए भी तो इस तरह कि बेचारी के ओठ और भी मिच गए। साहित्य और राजनीति से उनकी दिलचस्पी साथी क्लर्कों को समाचार पढ़ते देख लेने से आगे नहीं बढ़ी। शाम को दफ्तर से घर जाने के बाद अन्दर चारपाई पर लेट जाते और खिड़की में से किसी आते-जाते को एक नज़र देखकर करवट बदल लेने ही को माउंट-एवरेस्ट सर कर लेने के बराबर समझते।

एक दिन लालाजी सुबह जो किसी काम से घर के बाहर निकले तो उन्हें अपने घर के बिलकुल सामने के मकान पर एक नीला बोर्ड लगा हुआ दिखाई दिया। उत्सुकतावश वे ज़रा और आगे बढ़े। सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में उस पर लिखा हुआ था—ज्वन्दसिंह स्ट्रीट।

उसे देखकर वे कुछ क्षण वहीं-के-वहीं खड़े रह गए। यह ज्वन्दसिंह—यह उनके दफ्तर का एक साधारण-सा क्लर्क—सबसे आखिर में एक झोंपड़ा बनाकर गली का मालिक ही बन बैठा! उसे यह साहस हुआ कैसे?—इस सपाट मैदान को गुलजार बनाने में सबसे पहला प्रयत्न उन्होंने किया; गली में सबसे पहले उन्होंने मकान बनवाया, फिर यह ज्वन्दसिंह उनका अधिकार छीनने वाला कौन?

वे तेजी से घर के भीतर गये। जिस काम से बाहर आये थे, वह उन्हें एकदम भूल गया। उन्होंने पत्नी को तुरन्त बाथरूम में पानी रखने का आदेश दिया। उधर हैंडपम्प की आवाज बन्द हुई, इधर वे कमर में साफ़ा बांधे नहाने जा पहुँचे। उनकी पत्नी ने हैरानी से उनकी ओर देखा। उनका शरीर, जिसने शैथिल्य के वश हो स्नान छोड़ दिया था, अब जैसे एक ही बार अपने इस पाप का प्रायश्चित्त कर लेना चाहता था। पत्नी को इस प्रकार आँखें फाड़े अपनी ओर देखते पाकर लालाजी की भृकुटी तन गई, किन्तु दूसरे क्षण ही उनकी पत्नी स्नानगृह से बाहर निकल गई थी।

जल्दी-जल्दी चार-छः लोटे शरीर पर डालकर लालाजी बाहर निकले। कपड़े पहन, दो-चार कौर किसी-न-किसी तरह कण्ठ के नीचे उतार, साइकिल पर सवार हो, वे बाज़ार गये और एक प्रसिद्ध पेंटर को एक बड़ा-सा बोर्ड लिखने को दे आये। चलते समय उन्होंने उससे यह ताकीद भी कर दी कि शाम तक वह बोर्ड अवश्य तैयार कर दे।

बाज़ार जाने और पेंटर से मोल-तोल करने में उन्हें देर हो गई थी, इसलिए वे अधाधुंध साइकिल चलाते हुए दफ्तर पहुंचे। जब वे अपनी कुरसी पर जाकर बैठे तो उनकी साँस फूली हुई थी।

उस दिन दफ्तर में उनका मन नहीं लगा। ज्वन्दसिंह की इस धृष्टता पर वे सुलगते रहे। दिन-भर (प्रकट अपने सामने फाइलों के ढेर लगाए) वे इसी समस्या के बारे में सोचते रहे। शाम को जब वे अपनी कुरसी से उठे तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि जो हो, वे ज्वन्दसिंह को कभी इस प्रकार अपने अधिकारों पर डाका न डालने देंगे।

दफ्तर से सीधे वे पेंटर की दुकान पर पहुँचे। लालाजी को बड़ी निराशा हुई। उनकी लिखित सौम्यता न जाने कहाँ उड़ गई! वे पेंटर पर बे-तरह बरस पड़े। वादा करके पूरा न करने पर उन्होंने उसे बेहद डाँटा। आखिर जब उसने वचन दिया कि वे दो घंटे में लौटकर आयें, बोर्ड उनके तैयार मिलेगा, तब लालाजी ने उसका पिंड छोड़ा।

किन्तु घर आकर भी उन्हें चैन न पड़ा। खाना खाकर वे फिर बाजार गये और पेंटर के सिर पर आ सवार हुए। बत्तियाँ जल चुकी थीं जब उन्हें बोर्ड मिला। जब चलने लगे तो उन्हें मालूम हुआ कि साइकिल का लैम्प तो वह घर ही भूल आये हैं। ट्रैफिक पुलिस उन दिनों बड़ी तत्परता से काम कर रही थी। विवश दो मील पैदल चलकर वे बगल नगर पहुँचे। एक पैसे के कील उन्होंने मार्ग ही में ले लिये थे। घर पहुँचकर उन्होंने साइकिल ड्योढ़ी में पटकी, अन्दर से सीढ़ी उठाकर बाहर दीवार के साथ लगाई और हथौड़ी लेकर बोर्ड को गली की ऐन नुक्कड़ पर अपने मकान की दीवार से लगा दिया।

दूसरे दिन प्रात वे निर्धारित समय से कुछ पहले ही उठे। कोई दूसरा काम करने से पूर्व वे बाहर गये। पहले पास से, फिर जरा दूर से उन्होंने बोर्ड को देखा—बड़े-बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा था—भगवानदास हवेलीवाला स्ट्रीट! देखकर उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

पहले उन्होंने गली का नाम केवल 'भगवानदास स्ट्रीट' रखने का निश्चय किया था, पर तभी उन्हें ख्याल आया कि उनके गाँव '[illegible]' में पुरखों की एक बड़ी भारी हवेली थी, जिससे वे 'हवेलीवाले' कहलाते थे। अब यद्यपि लालाजी के पास न वह हवेली थी और न वह मान, फिर भी उस बोर्ड पर अपने नाम के साथ हवेलीवाला जोड़कर, उन्होंने न केवल अपने-आपको वरन् अपनी उस मिटी हुई प्रतिष्ठा को भी अमर बना देने का निश्चय कर लिया था।

भगवानदास हवेलीवाला स्ट्रीट—कई ऊँचे स्वर से गली का नाम दोहराते हुए वे घर के अन्दर गए।

उनकी पत्नी रसोईघर में बैठी आग सुलगा रही थी, धुएँ के कारण

उसकी आँखों से पानी बह रहा था। वह कभी पंखा हिलाती थी और कभी झुककर जोर-जोर से फूँक मारने लगती थी। सहसा उसके हाथों में हिलता हुआ पंखा रुक गया और उसकी गीली आँखें आश्चर्य से खुली-की-खुली रह गईं—लाला भगवानदास गा रहे थे। उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। वह रसोईघर की चौखट पर आ खड़ी हुई। लालाजी गुनगुन गा रहे थे। वे आँगन में घूमे जाते थे और गाए जाते थे—

मेरे मन में, अरे जी मेरे मन में, सुनो जी मेरे मन में, बसा है चोर चोर चोर !—

वह चकित-सी वहीं चौखट पर खड़ी रह गई।

उस दिन से लाला भगवानदास के जीवन में एक विचित्र क्रान्ति आ गई। उनकी शिथिलता एक अपूर्व स्फूर्ति में बदल गई। वे अपने पड़ोसियों से मिलने लगे। आर्य-समाज के सदस्य बन गए। गुरुद्वारे में जाकर श्री गुरु साहब की बानी सुनने लगे। गली की दशा सुधारने हेतु उन्होंने एक कमेटी बनाई। सबसे पहले उन्होंने स्वयं चन्दा दिया और फिर दूसरों के चुप हो जाने पर सारा खर्चा अपनी गिरह ही से देते रहे। उन्हीं के पैसे से गली में अस्थायी नालियाँ और हौदियाँ (चहबच्चे) बनायी गईं और जब इससे भी कुछ लाभ न हुआ और बरसात में गली की दशा पहले से भी खराब रहने लगी तो उन्होंने "भगवानदास हवेली-वाला स्ट्रीट' बसन्त नगर की दुर्दशा पर समाचारपत्रों में शोर मचाना आरम्भ किया और अन्त में कमेटी को हरजाने का नोटिस दे दिया।

बात यह थी कि गली में बरसाती पानी के निकास का कोई प्रबन्ध न था। आबादी नयी थी और उसके लिए नालियों की स्कीम अभी कमेटी की फाइलों में पहली मंज़िलें ही पार कर रही थी। कमेटी ने एक बड़ा-सा चहबच्चा लालाजी के मकान के समीप खुली जगह में बना रखा था। गली के भंगी अपने-अपने यजमानों की हौदियों का पानी कनस्तरों की सहायता से उसमें भर देते। नालियाँ भी उसी में जाकर पानी गिरा देतीं। कमेटी की मोटर रोज दोपहर को आती और उस बड़े चहबच्चे का गंदा पानी

भरकर ले जाती। लेकिन बरसात के दिनों में उस चहबच्चे का कहीं ढूँढे से पता न चलता। सारी-की सारी गली एक गंदा चहबच्चा बन जाती। इतना पानी जमा हो जाता कि मोटर हफ्तों लगी रहती तो भी खत्म न कर पाती। इस पानी का अधिकांश लालाजी के मकान के इर्द-गिर्द खुली जगह में सजा करता। जब पत्रों में लालाजी की फरियाद का कोई प्रभाव न हुआ तो इस पानी को लेकर उन्होंने कमेटी को हरजाने का नोटिस दिया कि यदि कमेटी ने गली से पानी के निकास का प्रबन्ध न किया तो वे हरजाने का मामला चला देंगे, क्योंकि उनके मकान की नीवों को पानी पहुँच रहा है और उसकी सड़ाँध के कारण उनका सारा कुटुम्ब बीमार रहता है।

लालाजी ने पत्रों में इतना शोर मचाया था, इतनी सभाएँ की थीं और इतने प्रस्ताव पास कराये थे कि कमेटी ने उनकी गली तो दूर, सारे बसन्त नगर में पक्की नालियाँ और फर्श बनाने का इरादा कर लिया। इससे पहले कि लालाजी कमेटी पर मामला चलाते, राज-मजदूर आ गये और गली में फर्श और नालियाँ बनने लगीं।

गली वाले यह देख बड़े प्रसन्न हुए। लालाजी की खुशी का तो जैसे वारापार न रहा। उनके लिए उन दिनों घर बैठे रहना मुश्किल हो गया। ज्वन्दसिंह के अतिरिक्त वे सब पड़ोसियों के घर जाते। सबको अपनी कारगुजारी की कहानी सुनाते। उन्होंने जो कुछ किया था, उसे खूब बढ़ा-चढ़ाकर बयान करते। प्रातः-सायं गली के फर्श और नालियों का इस तरह निरीक्षण करते, जैसे यह सब उन्हीं के पैसे से बन रहा हो। अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि उनका कोई भी पड़ोसी गली के नाम का विरोध न करेगा। बहुतों ने उन्हें विश्वास भी दिलाया था कि वे जब भी पत्र लिखते हैं, अपना पता 'भगवानदास हवेलीवाला स्ट्रीट' ही देते हैं और इस पते से उन्हें तुरन्त पत्र मिल जाते हैं। वे सब हैरान थे कि गली का नाम 'भगवानदास हवेलीवाला स्ट्रीट' प्रसिद्ध हो गया है तो ज्वन्दसिंह कम्बख्त क्यों अपने मकान के साथ अभी तक वह जरा-सा बोर्ड लगाये हुए है।

'जाट जो है,' लालाजी मन में मुस्कराते और दिल ही दिल में उनकी प्रशंसा के लिए उसे क्षमा कर देते ।

एक दिन लाला भगवानदास जब दफ्तर से आये तो उन्होंने दो मजदूरों को गली के सिरे पर बाज़ू में एक बड़ा-सा बोर्ड लटकाते देखा । नाम पढ़ा तो उनका दिल धक् से रह गया । दूसरे क्षण ज़रा सँभलकर उन्होंने पूछा, "यह बोर्ड किसके हुक्म से लगा रहे हो ?" "कमेटी के," बीड़ी पीते हुए एक ने उत्तर दिया । "कौनसी कमेटी ?" लालाजी गरजे । "म्युनिसिपल कमेटी ।"

लालाजी खड़े हो गए । कमेटी ने शायद उनसे जलकर पहले ही नाम बदल दिया था । शायद गली का इतना लम्बा नाम कमेटी को पसन्द न आया था या शायद जसवन्तसिंह केवल जाट ही न था, बल्कि जैसा कि पंजाबी में कहते हैं—असला जाट था !

लालाजी चुपचाप चल दिए । घर पहुँचकर उन्होंने साइकिल ड्योढ़ी में रख दी और चुपचाप जाकर बिस्तर पर लेट गए ।

शाम को सदा की भाँति उनके पड़ोसी गोविन्दराम सैर के लिए बुलाने आये तो उन्होंने कहला भेजा कि लालाजी की तबीयत ठीक नहीं ।

इसके बाद लालाजी की तबीअत कभी ठीक नहीं हुई । आर्य-समाज-मन्दिर और गुरुद्वारा से भी जो उनका नया प्यार जागा था, न जाने कहाँ जाकर सो गया और पड़ोसियों से मेल-मिलाप भी जिस तरह अचानक शुरू हुआ था, उसी प्रकार सहसा समाप्त हो गया ।

अब लालाजी दफ्तर से आकर फिर चारपाई पर लेटे रहते हैं और गली में आते-जाते को एक नज़र देखकर फिर करवट बदल लेने ही को माउंट-एवरेस्ट सर करने के बराबर समझते हैं ।

पलंग

दुल्हन की आँखों पर झुकती हुई केशी की निगाहें अचानक पलंग के सिरहाने गोल शीशे में लगे अपनी माँ के छोटे-से चित्र पर चली गयी—सुन्दर, नुकीला मुख, बड़ी-बड़ी आँखें, गिलाफी पलकें, पतली-नाजुक नाक, तराशे हुए, हँसते होंठों में मोतियों की पंक्ति और सहसा दुल्हन की आकृति पर उसकी अपनी माँ की रेखाएँ उभर आयी। ... दोनों के कद-बुत, नाक-नक्शे में कैसा साम्य था! ... केशी का मस्तिष्क धुँधला गया, एक तेज कँपकँपी उसकी शिराओं में दौड़ती चली गई। सर को जरा-सा झटका देकर उसने उस चित्र को आँखों से हटाने का प्रयास किया। लेकिन बचपन से लेकर अभी कुछ ही वर्ष पहले तक वह न जाने कितनी बार इसी तरह माँ के वक्ष पर लेटा था और वह स्मृति उस क्षण उसके मस्तिष्क के परदे पर से होकर निकल गई और अपनी दुल्हन की फैली-फैली मुग्ध आँखें और शर्मीले-रसीले होंठ चूमने के बदले, वह सहसा बाईं ओर फिसल पड़ा। चित लेट गया। पल-भर को उसकी निगाहें मच्छरदानी के खाली फ्रेम पर छाये मोतिये के लम्बे हारों पर चली गयीं, उसका हाथ सेज पर बेले की कलियों पर जा पड़ा और सहसा उसके जी में आया, वह उछलकर उठे और उस सुगन्धित, सुवासित सोहाग-कक्ष से बाहर निकल जाए।

लेकिन वह न उछला न उठा, चुपचाप लेटा रहा। दुल्हन न जाने क्या समझे, यही खयाल अचेतन में उसे पलंग के साथ बाँधे रहा। सर को झटका देकर उसने क्षण-भर पहले के चित्र को आँखों से हटाने का प्रयास किया, लेकिन एक के बदले अनेक चित्र एक-दूसरे के ऊपर बरसाती बादलों-से उमड़े चले आये—

इसी कमरे में, इसी पलंग पर, उसके पापा और ममी साथ-साथ

सोते हैं, बरामदे में पलंगड़ी पर वह पड़ा है और टुकुर-टुकुर देख रहा है। उसके पापा के साथ बैठी माँ कितनी भोली, कितनी सुन्दर लगती है!

··· उसकी माँ शीशे के आगे बैठी शृंगार कर रही है और वह दरवाजे की ओट से खड़ा चुपचाप उसे देख रहा है। आया जिस परी की कहानी सुनाती थी, वैसी ही सुन्दर तो उसकी माँ है। वह उसे देख लेती है और प्यार से बुलाती है। धरती पर घुटने टेक, पुलकित वह उसकी गोद में सर छुपा लेता है। माँ एक हाथ से उसके बाल सहलाती है, दूसरे से अपने बालों में कंघी किये जाती है।

···जाने पापा को क्या हो गया है! एक आदमी रोज आता है, उसके गले में दो साँप-से लटके रहते हैं, उनका एक-एक सिरा दोनों कानों में लगाकर उनका मुँह वह पापा की छाती पर जहाँ-तहाँ रखता है। फिर उनकी बाँह में सुइयाँ चुभोता है। पापा नहीं रोते, पर वह रोने लगता है। तभी उसे छाती से लगा लेती है और दूसरे कमरे में ले जाती है।···

···उसके पापा धरती पर लेटे हैं, हिलते-डुलते नहीं। घर में सब रो रहे हैं। वह भी रोता है। उसकी माँ रोए जाती है, उसे चूमे जाती है, रोए जाती है। औरतें उसकी चूड़ियाँ तोड़ देती हैं, उसके माथे का सिन्दूर पोंछ देती हैं, उसको उसकी गोद से छीन लेती हैं। वह रोता है, रोए जाता है, रोए जाता है, पर उसे कोई चुप नहीं कराता

···वही पलंग है। वह अपने पापा की जगह लेटा है। उसकी माँ उसके साथ लेटी है। एक सादी-सी सफेद धोती पहने है। सुबह का उजाला कमरे में झाँक रहा है, पर उसकी माँ बेसुध सोयी है। वह एक-टक उसे देखता रहता है—वह पतला, नाजुक, परियों का-सा मुख, बन्द आँखें, खुले-बिखरे बाल—वह उसे शहजादी-सी लगती है, जो शाप-ग्रस्त सोयी थी और जिसे शहजादे ने आकर जगाया था। वह धीरे-धीरे बढ़ता है और उसे किस्सी कर लेता है। उसकी माँ जग जाती है। बाँह फैलाकर उसे अपने सीने से बाँध लेती है और उसका माथा, उसकी आँखें और उसके होंठ चूम लेती है।···

…वह माँ के सीने पर लेटा है। वह उसे राजकुमार की कहानी सुना रही है, जो सात समुन्दर पार से शहजादी ब्याह लाया था। कहानी सुनाकर वह पूछती है, "क्या तू भी ऐसी शहजादी से ब्याह करेगा ?"

"मैं तुमसे ब्याह करूँगा।"

"धत् पगले ! कहीं बेटे माँओं से ब्याह करते हैं !" और वह उसे आश्वासन देती है कि वह उसके लिए अपने ही जैसी दुल्हन लाएगी।

"मैं फिर यही पलंग लूँगा।" वह पलंग के सिरहाने में लगे अपनी माँ के सुन्दर चित्र को देखकर कहता है।

"हाँ-हाँ, यह पलंग मैं तुम्हें और तुम्हारी दुल्हन को दूँगी।"

और वह उसे सीने से लगाकर भींच लेती है।…

"क्या बात है, तबीयत कुछ ठीक नहीं ?" सहसा दुल्हन करवट के बल होकर उसके माथे और बालों पर प्यार से हाथ फेरती है।

"नहीं, कुछ नहीं," सर के एक हल्के-से झटके से स्मृतियों की शृंखला तोड़ देता हुआ हँसता है—ऐसी हँसी जो लम्बी माँग-जैसी लगती है।

उसकी माँ ने तो सच ही कहा था। वैसा ही लम्बा कद, सुन्दर मुख, बड़ी-बड़ी आँखें, तीखे नक्श, नाजुक होंठ और मोतियों-से दाँत। माँ उसकी बहू अपने ही अनुरूप लाई थी। हालाँकि दहेज में बड़ा सुन्दर पलंग आया था, पर माँ ने वर्षों पहले किये अपने वायदे के अनुसार यही अपने वाला बड़ा, कीमती पलंग सोहाग-कक्ष में बिछा दिया था। पलंग क्या, अपना कमरा ही दुल्हन को दे दिया था।

दुल्हन उस पर झुकी उसकी आँखों में कहीं दूर झाँकने का प्रयास कर रही थी—जानना चाहती थी कि कुछ क्षण पहले का उसका उत्साह एकदम शिथिल क्यों पड़ गया ? पर यह जानने का उसके पास कोई साधन न था और बड़े संकोच-भरे स्नेह से वह उस पर किंचित् झुकी, उसके बाल सहलाए जा रही थी।

वैसी कुछ क्षण चुपचाप लेटा रहा, फिर उसने सहसा दुल्हन की गरदन में हाथ डालकर उसे अपने सीने से लगा लिया। कितनी ही देर तक वह उसके सर को अपने सीने पर रखे उसके बालों, गालों और

होंठों को सहलाता रहा, यहाँ तक कि उसके दिमाग से सब जाले दूर हो गए और सीने पर लेटी उसकी दुल्हन और उसके गोरे गदराए शरीर का एहसास उसकी नस-नस में समा गया। उसने ज़ोर से उसे भींचकर अपने पहलू में लिटा लिया और उसके गुदाज सीने पर सर रखकर लेट गया। बार-बार उसका मन होने लगा कि वह सर उठाए, अपनी बीबी को प्यार करे, पर जैसे उस चित्र का सामना करने में उसे संकोच हो रहा था। यहीं लेटे-लेटे बाएँ हाथ से उसने अपना तकिया उठाकर सरहाने से चित्र के आगे रख दिया। तब उसने सर उठाया। लेकिन वह चित्र जैसे उस तकिये के पीछे घूमकर और भी नुमायाँ हो गया था और दुल्हन के चेहरे पर किसी दूसरे चेहरे की रेखाएँ बनने लगी थीं। नहीं नहीं नहीं। वह मुँझलाकर मन-ही-मन चिल्लाया और फिर सिसककर वैसे ही चित लेट गया। फिर न जाने कैसा बगूला-सा उसके मन में उठा। वह उठा और सोहाग-कक्ष के बाहर हो गया।

बरामदे की झिलमिली से चैत की पूनो बड़ी शरमाई निगाहों से अन्दर झाँक रही थी। क्षण-भर को वह बरामदे की मेहराब में रुका। चुपचाप बाहर फैली चाँदनी में ताकता रहा। ठंडी हवा के स्पर्श से उसकी तनी हुई नसों को कुछ अजीब-सी राहत मिली, लेकिन वह पलटा नहीं, बल्कि बाहर निकल आया। दाईं ओर फूलों की रविशों में फ्लाक्ज़ और वर्बीना खिले थे, सामने डेलिया के पौधे, फूलों के भार से झुके, हल्की बयार के स्पर्श से झूल रहे थे। घास के लॉन के साथ कटी-छँटी मेहँदी के पीछे क्यारी में सोसन खिला था और गुलाब की बेल के गिर्द गोल थाले में नेस्टर्शियन के ढेरों फूल जैसे उस चाँदनी में नहा रहे थे। अनजाने ही उन रविशों में अटकता, भटकता, फूलों के रंगों को झुककर देखता, बेख़याली में उन्हें छूता, कैसी बढ़ता चला गया। दिन के वक़्त जो फूल अपनी रंगीनी से आँखों को चौंधिया देते थे, वे इस शीतल चाँदनी में बड़े ही सुखद, शांत और तनी हुई नसों को आराम पहुँचाने वाले लग रहे थे। पीला और गुलाबी रंग सफ़ेद-सफ़ेद लग रहा था और लाल, नीला या जामुनी काला दिखाई देता था।

चारदीवारी के पास पहुँचकर वहाँ रुका, जहाँ दीवार के -बहार का बेला फूला था। चारदीवारी की छाया के बेले के फूल मोतियों-से चमक रहे थे। पहले जब चाँदनी बेला खिला देखता तो सदैव कहीं पढ़े या सुने गीत की उसके होंठों पर आ जाती थी और वह गुनगुना उठता था—

बहुत दिनों के बाद खिला बेला,
मेरा आँगन महका, आँगन महका

न आज जब सचमुच उसका आँगन महका था तो वह गीत न मृति के किस गर्त में जा डूबा था। कॉटेज से गेट तक और गेट तक वह चुपचाप घूमता रहा। तभी जब वह दूसरी बार की ओर वापस आ रहा था, उसकी दृष्टि कॉटेज के दूसरे वाले कमरे के शीशे पर गई। अन्दर रोशनी थी। उसकी माँ ही जाग रही थी। उसकी आंटी और दूसरी औरतें भी जाग वीं और शायद उन्हीं के बारे में सोच रही थीं—उसकी माँ ने श्रम और साध से उसका सोहाग-कक्ष सजाया था। सारे दिन रे वाले खाने के कमरे में (जिसकी मेज-कुरसियाँ बाहर बरामदे में दी गई थीं और जिसमें बहू को उतारा गया था) माँ, आंटी और री स्त्रियाँ गान्ना, गुथली, तिल-खेलाई और मुँह-दिखाई की रस्में करती रही थीं, साथ के ड्राइंग-रूम में वह अपने मित्रों में घिरा ठा रहा था, बराबर के उसके अपने कमरे में दुनिया-जहान के सामान में दहेज का सारा सामान और फर्नीचर रखा जाता रहा था और इधर के माँ वाले कमरे को सोहाग-रात के लिए सजाया जाता रहा था। दसियों रस्मों, मेहमानों की आवभगत और दूसरे बीसियों कामों में उलझी और कई रातों की जगी अपनी माँ को उसने निरन्तर इस कमरे से आते-जाते देखा था। आंटी और दूर के रिश्ते की उसकी एक युवा मौसी इस काम में उसका हाथ बँटा रही थीं। उसकी माँ के उल्लास का वार-पार न था—जैसे इतने रतजगों, इतनी दौड़-धूप, इतने श्रम, इतने हंगामे की चरम परिणति बस इसी कमरे की सजावट

से थी । वह कई बार कहने को आता था कि आखिर देखो, उसकी माँ और भाई नहीं क्या मुलाकात कर रही है, पर हर बार उसे मर्दूद दिया गया था । मन में पहले उसे उधर झाँकने की भी मनाही थी ।

दिनों में बातें करने, रस्मों में योग देने और औरतों के मज़ाक सुनते हुए केशी की निगाहें बार-बार अपनी माँ के चेहरे पर जा टिकती थीं । यद्यपि उसकी इस सब आयोजन होने की खाई थी और मन वर्षों मर्दों ने मेहनत के कुछ अनोखापन कालिमा उसकी आकृति पर उभार दिया था और उसकी आँखों के नीचे हलके स्याह गड्ढे बन गए थे; लेकिन शरीर मिलन की गाढ़ी में, अपने इकलौते बेटे के विवाह के उल्लास में जगमगाता उसका मुख केशी को उपस्थित स्त्रियों में सबसे सुन्दर लगता था । उसकी आँखों के गड्ढे न जाने किस जादू के प्रभाव में लोप हो गए थे । रस्में पूरी करती और मेहमानों की देख-भाल करती हुई वह बीच-बीच में जाकर सोहाग-कक्ष को सजाने में लग जाती । थकान का उसकी आकृति पर कहीं चिह्न तक न था ।

वह जानता था कि इतनी थकान और इतने रतजगों के कारण माँ बीमार पड़ जाएगी । उन दिनों प्रायः हर रात सोने से पहले माँ के पास जाकर उसने कहा था, "माँ, अब सो जाओ !" पर स्वयं सोने के बदले, उसे उसकी चारपाई पर ले जाकर, हलका-सा तेल उसकी कनपटियों पर मल, उसकी भवों को सहला माँ उसे सुला जाती थी और स्वयं काम में जा लगती थी···केशी को बहुत पहले सर में तेल डलवाने की आदत पड़ गई थी । परीक्षाओं के दिनों में जब वह रात-रात-भर पढ़ता था और दिन को एकाध घंटा सोना चाहता था और उसे नींद न आती थी और माँ उसके सर में तेल लगाती थी, तो केशी अपने सर पर झुके उसके मुँह को एकटक देखता रहता और सोता न था, तब माँ प्यार से उसकी आँखें बन्द कर देती थी, उन्हें हलके-से चूमकर भवों पर अपनी ढीली उँगलियाँ जल्दी-जल्दी चलाती थी और इतना स्नेह उन कोमल उँगलियों में भर देती थी कि उसकी भारी हो जाती थीं और वह गहरी नींद सो[illegible] । । केशी

उससे यह कला सीख ली थी। कभी जब थकन अथवा चिन्ता से माँ को नींद न आती थी, तो वह खुद उसके सिराहने बैठकर बड़े ही प्यार से उसकी कनपटियाँ सहलाकर उसे सुला देता था। जब छोटा था—तेरह-चौदह बरस का—तो ऐसे में माँ कभी-कभी उसका सर झुकाकर उसे चूम लेती थी। जब वह बड़ा हो गया—बी० ए०, एम० ए० कर, विश्व विद्यालय में मनोविज्ञान का प्राध्यापक हो गया, तो ऐसे में माँ उसका मस्तक चूम लेती थी और केशी बड़े स्नेह से उसे थपथपाकर सुला देता था। वह चाहता था, शादी में आयी हुई स्त्रियों से घिरी अपनी माँ को उठाए और उसे उसके कमरे में ले जाकर गहरी नींद में सुला दे। लेकिन वहाँ तो वह सोहाग-सेज सजाने में लगी थी। फूलों की कमी के कारण न जाने उसने कितने आदमियों को कहाँ-कहाँ भेजा था और कितना पैसा पानी की तरह बहाया था। वह उससे कहना चाहता था, 'माँ, तुम क्यों जान हलकान कर रही हो, तुम्हारा स्नेह इन सारी रस्मों-खुशियों, साज-सिंगार से बड़ा है, मेरे लिए उसका मोल इस सबसे कहीं ज्यादा है। तुम बीमार पड़ जाओगी!' पर वह यह भी जानता था कि वह उसकी एक न सुनेगी।' "मेरी शादी तो, बेटे, कुछ योंही हुई थी," उसने केशी से एक बार कहा था, "तुम्हारे पिता मामूली क्लर्क थे और कम्पटीशन में अभी बैठे न थे। मैं नहीं चाहती तुम्हारी बहू के मन में कोई साध रह जाए। फूलों का एक गजरा तक न आया था मेरे लिए। देखना, तुम्हारी बहू की सोहाग-सेज कैसे सजाती हूँ!"

और जब सोहाग-कक्ष का परदा उठाकर उसे अन्दर धकेलती और 'देखना, फिलासफी ही न बघारते रहना!' कहती और हँसती हुई माँटी चली गई थी तो केशी क्षण-भर चकित-सा रह गया था...कमरा उसका चिरपरिचित था, पलंग और दूसरा साज-सामान भी उसका चिर-परिचित था, माँ ने अपना ड्रेसिंग टेबल, अपना शृङ्गार-दान, अपना पेपरमैशी का कश्मीरी चूड़ी-बक्स, बम्बई से मँगाया हुआ अपना कीमती टेबल लैम्प, सब कमरे में कुछ इस ढंग से सजा रखा था कि हर चीज़ नुमायाँ दिखाई दे रही थी। लेकिन सबसे ज्यादा जो

चैत की चाँदनी सचमुच अद्भुत सुरा-सी नसों में समा रही थी, पर दोनों ही उसकी ओर से बेपरवाह थे। दुल्हन को अपने पति के इस विचित्र व्यवहार से उलझन हो रही थी, अपनी सहेलियों से (जिनमें कुछ दो-दो बच्चों की माएँ थीं) इस पहली रात और उसके सम्बन्ध में जो कुछ उसने सुन रखा था, वह जैसे उसकी पकड़ में आकर दूर चला जाता था। अपने पति की सुन्दरता, उसकी बुद्धि, उसकी कार्य-कुशलता की बड़ी प्रशंसा उसने सुनी थी। विश्वविद्यालय में वह अध्यापक था और उसके पिता ने न केवल उसके साथी अध्यापकों, बल्कि उसके छात्रों तक से उसके सम्बन्ध में कई तरीक़ों से हर तरह की पूछ-ताछ की थी और पूरी तरह सन्तुष्ट होकर यह रिश्ता पक्का किया था। उसका होने वाला मंगेतर सनकी है अथवा उसके मस्तिष्क का कोई पुरजा ढीला है, ऐसा तो किसी ने भी नहीं कहा था और अपने पति के इस विचित्र व्यवहार के सम्बन्ध में सोचती और अपने भविष्य की किंचित् अत्युक्तिपूर्ण दुश्चिन्ताओं में ग्रसी दुल्हन कभी-कभी अपने पति पर दृष्टि डाल लेती और चुपचाप उसके साथ घूमे जाती। चाँदनी की ओर उसका ध्यान ज़रा भी न था।

और केशी का दिमाग़ एक दलदल बना हुआ था। वह कुछ भी सोच न पा रहा था। दोनों हाथ कमर के पीछे किये, बाएँ हाथ की कलाई को दाएँ हाथ से बाँधे, कंधे तनिक झुकाए, वह चुपचाप घूमे जा रहा था। जब वे दूसरी बार गेट तक पहुँचे तो अचानक केशी ने कहा, "आओ, ज़रा बाहर चलें।"

"रात काफ़ी हो गई है," दुल्हन ने हलका-सा विरोध किया।

केशी को सहसा अपने एक मित्र की बात याद हो आयी, जिसने अपने नये प्रेम का किस्सा बताते हुए उससे कहा था कि पानी की टंकी से ग्रांट ट्रंक रोड के फाटक तक सड़क इतनी एकांत, छायादार और रहस्यमयी लगती है कि प्रेमियों के लिए उससे बेहतर कोई और सड़क नहीं।...और केशी ने कहा, "बस ज़रा पानी की टंकी तक जाएँगे।"

और वह बँगले का फाटक खोलकर बाहर निकला। पानी की टंकी

कहाँ है, दुल्हन को मालूम न था। वह मौन रूप से उसके पीछे हो ली। केशी उसे वहाँ की टापोग्राफी बताने लगा कि किस प्रकार वहाँ पहले अधिकतर रेलवे-अधिकारी रहते थे, फिर कैसे विभाजन के बाद वे लोग चले गये और वे बँगले हिन्दुस्तानियों के पास आए। आटे की मिल के पास से गुज़रते हुए उसने बताया कि वहाँ कैसे आटा और मैदा तैयार होता है, कैसे मालिकों ने वहाँ कोल्ड स्टोरेज बना रखा है, जहाँ वे चालीस हजार मन आलू स्टोरेज करके बेचते हैं। प्रेस के पास पहुँचकर उसकी खिड़कियों के शीशों में से वह बड़े जोश से रॉटरी मशीन की कार्य-प्रणाली उसे समझाने लगा कि किस प्रकार एक ओर से काग़ज़ खुलता चला जाता है और दूसरी ओर से पूरा समाचार-पत्र छपकर और मुड़कर निकलता आता है। वह स्टेशन की ओर को चला जा रहा था कि सहसा उसे फिर पानी की टंकी से ग्रांट ट्रंक रोड तक के एकान्त की याद हो आई और वह मुड़कर रेलवे फाटक की ओर हो लिया। फाटक बन्द था, लाल बत्ती देखकर केशी ने कहा, "यह फाटक एक मुसीबत है, चौबीसों घड़ी कोई-न-कोई गाड़ी यहाँ से गुजरती रहती है। इतना बड़ा स्टेशन बन गया, लेकिन इस फाटक के भाग नहीं खुले। यहाँ पुल बने तो मुसीबत दूर हो।"

गाड़ी आने में अभी देर थी। बगल के रास्ते से निकलकर वे पानी की टंकी तक आ गई। दाईं ओर सड़क खुली और रोशन थी, बाईं ओर अँधेरी और छायादार। जब केशी उधर मुड़ने लगा तो एक बार फिर दुल्हन ने कहा, "चलिए, अब घर चलें। रात काफ़ी हो गई है।" पर केशी ने उसे अपनी दाईं बाँह में ले लिया, "चलो, कुछ र तक चलते हैं। कैसी छिदरी चाँदनी सड़क पर फैली है!"

"उस ओर क्यों नहीं गये? बड़ी खुली सड़क है।"

"क्यों, डर लगता है?" और ज़रा हँसते हुए झुककर उसने दुल्हन का माथा चूम लिया।

दुल्हन तड़पकर उसकी बाँह के घेरे से निकल गयी, "क्या करते हैं ...सड़क पर..."

केशी ने हँसकर उसे फिर बाँह में ले लिया। और चूमना चाहा। तभी सामने से तेज़ रोशनी उसकी आँखों में पड़ी और क्षणभर बाद एक विशाल भारी-सा ट्रक धड़धड़ाता हुआ पास से निकल गया। अभी उसकी आँखों की चुँधियाहट दूर न हुई थी कि दूसरे की बत्ती आँखों में कौंधी और फिर तो एक-के-बाद-एक, कितने ट्रक गुजर गए। जाने कहाँ से आ रहे थे और कहाँ जा रहे थे। ... अच्छी सुनसान अकेली सड़क है! केशी ने मन-ही-मन कहा। उसका सारा रोमांस हवा हो गया।

"चलिए अब चलें," दुल्हन पहले ट्रक की बत्ती को देखकर ही बाँह के घेरे से निकल गई थी। अब रोनसे स्वर में बोली "मैं थक गई हूँ।"

"यह मेन सड़क है, दिन-रात यहाँ ट्रक और मोटरें धड़धड़ाती हैं," केशी ने उसे समझाया, "चलो, इधर एम० टी० लाइन्ज़ की ओर चलते हैं। गिरजे तक बिलकुल सूनी सड़क है।"

"चलिए, मैं थक गई हूँ," दुल्हन मिनमिनाई।

लेकिन उसे फिर अपनी बाँह में भरता हुआ केशी मिलटरी लाइन्ज़ की खुली सड़क पर बढ़ चला।

सड़क के दोनों ओर बँगलों पर चाँदनी चुपचाप झर रही थी, ठहरी, निथरी जैसे चकित! खुली सड़क! किनारों पर पेड़ों के नीचे प्रकाश-छाया के जाल तभी कहीं से सुवास का झोंका आया। केशी ने कल्पना की, जाने कहाँ रात की रानी चाँदनी की स्पर्धा में खिली मुस्करा रही है और उसकी हर साँस से सुवास वायु-मण्डल को सुगन्धित बना रही है। केशी ने दुल्हन को फिर बाँह में भर लिया और सड़क के किनारे पेड़ों की छाया में हो लिया।

"क्या बहुत थक गई हो?"

दुल्हन ने उत्तर नहीं दिया। अपने शरीर का बोझ उसने अपने पति पर डाल दिया और पेड़ की छितरी छाया में उसे अपने सीने से लगाकर केशी ने चूम लिया।

तभी परे सड़क से टार्च की रोशनी चमकी। दोनों अलग हो गए। केशी का रंग फक हो गया और दिल धड़क उठा। उसे याद आया कि...

एम० टी० लाइन्ज में बारह के बाद घूमने की इजाजत नहीं।

'चौदहवीं का चाँद हो या आफ़ताब हो
जो भी हो तुम खुदा की कसम, लाजवाब हो · · '

गहरी हरी वर्दियाँ पहने तीन-चार सैनिक प्रचलित फिल्म का गाना गाते चाँदनी के बावजूद, टार्च उन पर फेंकते सड़क से गुजर गए।

गाने की पहली पंक्ति सुनते ही केशी ने चाहा था, अपनी दुल्हन को बाँहों में भर ले और उसकी आँखों में देखता हुआ गाए

'चौदहवीं का चाँद हो या कि आफताब हो '

लेकिन सैनिकों की बदतमीज़ी ने उसका सारा रोमांस खत्म कर दिया। उसे एक मित्र की याद हो आई जो एम० टी० लाइन्ज के एक बँगले में अपनी बहन के साथ खाने पर आया था। बातें करते बारह बज गए थे। जब साढ़े बारह के लगभग रिक्शा न मिलने से वे दोनों पैदल आ रहे थे तो उन्हें सिपाहियों ने टोका और मित्र को वापस बँगले पर पहुँचकर साबित करना पड़ा कि वह अपनी बहन के साथ वहाँ खाने पर आया था। इससे पहले कि दुल्हन घर चलने का अनुरोध करती, केशी वापस फिरा। जब सैनिक ने गाना गाते-गाते टार्च का एक लिश्कारा उसकी दुल्हन पर डाला था, तो क्रोध के मारे केशी का मन हुआ था कि उसे कॉलर पकड़ दो झापड़ जमा दे। पर यदि कोई उससे पूछता, विश्वविद्यालय का वह अध्यापक, अपनी दुल्हन के साथ आधी रात को उस सूने में क्यों घूम रहा है, तो वह क्या जवाब देता? उसका सारा क्रोध अपनी माँ पर, उस पलंग पर और अपनी मानसिक दुर्बलता पर उमड़ पड़ा।

वह तेज-तेज चलता वापस आया। दुल्हन उसके पीछे घिसटती चली आयी। बँगले में पहुँचकर सहसा केशी की चाल धीमी हो गई, पर दुल्हन नहीं रुकी। तिलमिलाती वह बढ़ी गई और जाकर पलंग में धँस गई। केशी जब कमरे में दाखिल हुआ तो वह टाँगें नीचे किये सीधी लेटी थी, साड़ी का पल्लू एक ओर लटका था, ब्लाउज के खुले गले से उसका गोरा सीना शीशे-सा झलक रहा था। केशी का

जी चाहा, वह कुर्सी के पास नीचे बैठ जाए और अपना सर उसकी गोद में रख दे। पर अपनी पत्नी पर से फिसलती उसकी दृष्टि अचानक ही अपनी माँ के [illegible] पर चली गई और वह अनिश्चित-सा कमरे के बीच खड़ा रहा। दुल्हन चुपचाप छत की ओर ताक रही थी और उसकी आँखें झिलमिला रही थीं।

केशी की दृष्टि सहसा बीच के दरवाजे पर गई और उसने कहा, "यह दरवाजा तो बाहर से बन्द है न!"

"जी," दुल्हन ने वहीं छत पर देखते हुए उत्तर दिया।

केशी ने कमरे के दो चक्कर लगाए।

"इसकी चाबी किधर है?"

"आंटी के पास होगी। सब सामान उन्हीं ने रखवाया था।"

केशी बाहर निकल, कॉरिडोर के दूसरे कोने तक गया। माँ के कमरे की बत्ती बुझ चुकी थी। थकी हुई औरतें सो गई थीं। उसके मन में आया कि माँ को जगाए, लेकिन आंटी जग गई और उसने मजाक कर दिया तो? ...वह वापस फिरा। कमरे में आकर कुछ क्षण घूमता रहा। उसकी निगाह दुल्हन पर गई, वह उसी तरह लेटी छत की ओर ताक रही थी। सहसा बढ़कर उसने बीच के कमरे का दरवाजा धीरे से धकेला। दरवाजा अन्दर से बन्द था और नीचे की चिटखनी लगी थी। उसने सोचा यदि केवल ऊपर चिटखनी लगी होगी तो ऊपर का शीशा तोड़कर खोल लेगा। लेकिन उसकी माँ सदा किवाड़ों की निचली चिटखनियाँ लगाती थी।

पीछे हटकर उसने दरवाजे पर नज़र डाली, दोनों किवाड़ों में तीन-तीन शीशे लगे थे और फिर लकड़ी का पल्ला था। यदि वह तीसरा शीशा तोड़ दे तो बाँह डालने पर निचली चिटखनी खुल सकती थी। और उसके जी में आया कि ज़ोर का एक मुक्का मारकर शीशे को तोड़ दे। लेकिन थकी-हारी माँ के जाग पड़ने की हलकी-सी सम्भावना उसके जोश पर ठंडे पानी का छींटा बन गई। दोनों मुट्ठियाँ कमर के पीछे बाँध वह कमरे में घूमने लगा। दो-तीन चक्कर लगाकर

ह फिर दरवाजे के आगे जा खड़ा हुआ। तभी उसकी दृष्टि दरवाजे के नेचले हिस्से पर गयी। दाएँ किवाड़ का कोना चोट-खाया था। निकट आकर उसने देखा रोग़न में एक हलकी-सी लकीर साफ़ दिखाई दे रही थी। वह फ़र्श पर बैठ गया। पीठ उसने पलग की पट्टी से लगा ली और एड़ी का निचला हिस्सा किवाड़ के उस चोट खाये भाग पर अड़ाकर, पूरा जोर लगाया। दरवाज़ा हिला भी नहीं, बल्कि पलग पीछे को खिसक गया।

छत की ओर देखती हुई दुल्हन उसी तरह लेटी रही। पलंग के हिलने का जैसे उसने कोई नोटिस नहीं लिया। सहसा केशी ने उस पर एक चोर-निगाह डाली। तभी दुल्हन ने उसकी ओर देखा। जाने उन निगाहों मे क्या था, एक बहुत ही सूक्ष्म-सी व्यंग्य की रेखा, जो किसी सनकी के करतब देखने वालों की आँखों में होती है, केशी के सर पर एक जनून-सा सवार हो गया। सोच-समझ की शक्तियाँ उसकी एकदम जवाब दे गईं। उछलकर वह उठा और बढ़कर उसने ज़ोर का एक मुक्का बीच के शीशे पर दे मारा।

शीशा झनझनाकर टूट गया।

दुल्हन लेटी न रह सकी। किंचित् घबराकर वह उठी और अपने पति के पास आ खड़ी हुई।

"आप यह क्या कर रहे हैं?" उसने चिढ़कर कहा।

केशी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी ओर देखा तक नहीं। टूटे हुए शीशे मे से बाँह डालकर उसने चिटखनी खोली। उसके शरीर के भार से सहसा दरवाज़ा पीछे को हट गया और उसकी बाँह में शीशा चुभ गया।

बाएँ हाथ से किवाड़ थाम, केशी ने धीरे से, सँभालकर बाँह बाहर निकाली।

"हाय, आप क्या कर रहे है?" उसकी फटी कमीज़ में खून रिसते देखकर दुल्हन ने घबराये हुए, शिकायत-भरे स्वर मे कहा और उसकी डरी-डरी निगाहें सारे कमरे मे घूम गईं कि कहीं कुछ मिले, जिससे

यह प्यार की चीज़ है ।

केशी ने उधर ध्यान नहीं दिया । दोनों हाथों से किवाड़ खोल कर अन्दर दाखिल हुआ । चञ्चल उँगलियों से उसने बिजली का बटन दबाया । कमरे में दहेज का सारा सामान-सजा पड़ा था—फर्नीचर, ड्रेसिंग टेबल, पानदानी, चांदी की कटोरियां, मेवे-मिठाइयों के थाल । एक ओर वह पलंग भी पड़ा था, जो दहेज में आया था और उस पर बेशुमार तकिए सजे थे । दोनों बाहों में भर-भर उसने कपड़े कोच पर पटके । दुल्हन उसके पीछे-पीछे अन्दर आ गई थी । उसकी आँखों में रोष के बदले फिर भय लौट आया था । सहसा पलटकर केशी ने उसे दोनों हाथों से थाम लिया । पल-भर वह उन डरी-सहमी आँखों में झांकता रहा, फिर उसने उसे दोनों बाहों में भरकर चूम लिया ।

दुल्हन और भी सहम गई । पर जब उसने अपने पति की आँखों में कठोरता के बदले अपार माधुर्य पाया और उसके गरम होंठों का स्पर्श अपने कानों के बीच कंठ-भाग पर महसूस किया तो उसके सहमे, डरे अंग ढीले पड़ गए और वह उसके बाल सहलाने लगी ।

लड़के की मां बाहर आई तो सोहाग-कक्ष का दरवाजा चौपट खुला देखकर चौंकी । दबे पांव बढ़कर उसने परदा जरा हटाया । दिल धक-से रह गया, सजा-सजाया कमरा भांय-भांय कर रहा था । तभी उसकी निगाहें बीच के खुले दरवाज़े और फ़र्श पर बिखरे शीशे के टुकड़ों पर गईं । चोरी की आशंका से घबराकर वह उधर बढ़ी, तो चौखट में सन्न खड़ी रह गई । कोच की गद्दियां सर के नीचे रखे दहेज के खुर्रे पलंग पर दूल्हा-दुल्हन बेसुध सोए थे ।

[illegible] है।
[illegible] के लिए [illegible]
[illegible] के [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible]
[illegible] के [illegible]
[illegible] के [illegible]
[illegible]
[illegible] किया [illegible]
[illegible] नहीं।
[illegible]
[illegible]
[illegible] था। तभी [illegible]
[illegible] के [illegible]
[illegible] तो [illegible]
[illegible] के नीचे [illegible] दहेज के [illegible]
[illegible] है।